

ISSN: 3107-7560

KalaSopan

"Arts Evoke the Mystery"

KALA SOPAN

**MULTIDISCIPLINARY
RESEARCH JOURNAL**

Volume - 03, No. 3
July to September 2025

A Peer-Reviewed Bilingual Quarterly Research Journal
Year - 01, Issue - 03





Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal

Volume – 03 No. 03

July to September 2025

A Peer- Reviewed Bilingual Quarterly Research Journal

Year – 01, Issue - 03

ISSN : 3107-7560

Advisory Board

1. Dr. Avadhesh Mishra, Associate Professor, DSMNRU, Lucknow, UP
2. Dr. Uttma Dixit, Head, Department of Painting, Faculty of Visual BHU, Varanasi, UP
3. Dr. Mahaveer Singh, Ex Director, All India Radio, Bhopal, MP
4. Prof. Munna Tiwari, Dean, Faculty of Arts, Bundelkhand University, Jhansi, UP
5. Dr. Prashant Mishra, BJR Institute of Law, Bundelkhand University, Jhansi, UP
6. Dr. Yatendra Mishra, Associate Professor, Dr. B. R. Ambedkar Institute of Social Sciences (Department of Social Work), Bundelkhand University Jhansi Uttar Pradesh
7. Dr. Neeta Yadav, Associate Professor, Department of History, Siddharth University, Kapilvastu, Siddharth Nagar, Uttar Pradesh
8. Prof. Jitendra Tiwari, Department of Sociology, Bundelkhand Degree College, Jhansi, Uttar Pradesh

Editor

Dr. Shweta Pandey

Assistant Professor, Institute of Fine Arts,

Bundelkhand University Jhansi Uttar Pradesh

drshwetapandey@bujhansi.ac.in, shwetapandeygkp@gmail.com

Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal

Joint Editor

Dr. Umesh Kumar

Associate Professor, Department of Mass Communication and New Media,
Central University of Jammu, Jammu and Kashmir
umesh.mcnm@cuajammu.ac.in, umesh.or.kumar@gmail.com

Editorial Board

Dr. Anupam Pandey

Senior Assistant Professor, Department of Commerce,
Sikkim Manipal University, Sikkim
anupamsarnath@gmail.com, anupam.pandey@smudoe.edu.in

Dr. Gaurav Ranjan

Assistant Professor, Department of Journalism & Mass Communication,
Central University of Odisha, Sunabeda,
NAD Post Office, Koraput – 763004, Odisha, India
granjan@cuo.ac.in

Dr. Anjani Kumar Jha

Associate Professor & Head,
Department of Media Studies School of Computational Sciences,
Information and Communication Technology,
Mahatma Gandhi Central University, Dr. Ambedkar Administrative Building,
Near OP Thana, Raghunathpur, Motihari, District- East Champaran,
Bihar- 845401 (INDIA)
anjanikumarjha@mgcub.ac.in
<https://www.mgcub.ac.in/academics/faculty/49>

Prof. Paramveer Singh

Professor, Department of Mass Communication and New Media,
Central University of Jammu, Rahya-Suchani (Bagla), District Samba, Jammu,
Jammu & Kashmir- 181143, India
paramveer.mcnm@cuajammu.ac.in

Dr. Ratnesh Yadav

Associate Professor, Department of Hindi and Other Indian Languages,
Central University of Jammu, Rahya-Suchani (Bagla),
District Samba, Jammu, Jammu & Kashmir- 181143, India
ratnesh.hnd@cuajammu.ac.in

Subscription

Single Copy: Rs. 500/-

Annual: Rs. 1500/-

Institutional Membership: Rs.2000 (Annual)

Please remit your subscription through draft in favour of kala sopan.

Cover Design : Shivay Design Maker, Jhansi, UP

Publisher: Kala Sopan

Chief Editor- Dr. Shweta Pandey, Publisher- Kala Sopan and printed at
M/S Print Labs, Jeevan Shah Tiraha, Jhansi, Uttar Pradesh

About us

Starting Year of Publication 2025

Subject : Bilingual (Hindi & English)

Frequency : Quarterly

Aim And Objectives of Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal Aim of Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal. The aim of the Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal (KSMRJ) is to be a leading source of scholarly articles and research papers through the promotion of research publication at affordable or at no cost in long run. In another word to make research publication hassle free for financially constrained researchers and scholars. The published article will always be open access, free under Creative Commons License and archived for future generations.

Objectives of Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal

1. To provide publishing platform to researchers and scholars from different field.
2. To give scholars a chance to be part of the scholars community ho assists and helps others in publication and review.
3. To make research papers and scholarly articles available.
4. To create avenues for promotion and publication of research papers about and from social, economically and culturally weakened sections of the society across the world.
5. To make research publication hassle free to ensure sharing of knowledge in due time. Scope of Publication Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal is a Multi Disciplinary journal and hence wide scope of publication.

Original research articles, reviews and short communication in all areas of Science, Social Science, Engineering and Management are most welcome in for publication in the Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal.

Authors are encouraged to submit complete unpublished and original works, which are not under review in any other journals. The scopes of the journal include, but not limited to, the following topic areas: science & technology, social studies, planning and development, English language and literature.

Title	Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal
Frequency	Quarterly
ISSN	ISSN: 3107-7560
Publisher	Kala Sopan (A NGO Registered in Jhansi, Uttar Pradesh)
Chief Editor	Dr. Shweta Pandey
Copyright	Kala Sopan
Starting Year	2025
Subject	Multi Disciplinary Subjects
Language	Bilingual (Hindi & English)
Publication Format	Print
Email ID	kalasopan2022@gmail.com
Mobile No.	9935032832
Address	38 C, Nizampur, Badri Kushwaha ki Gali, Gorakhpur 273005 Uttar Pradesh

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विवरण	पेज नं.
1.	वानगोंग द्वारा लिखित पत्रों में कला का कलात्मक अध्ययन — अक्षय कुमार, डॉ. श्वेता पाण्डेय	08–21
2.	लक्ष्मी मंदिर के भित्ति चित्रों का कलात्मक अध्ययन — सौनक सिरौठिया, डॉ. श्वेता पाण्डेय	22–30
3.	रवीन्द्रनाथ टैगोर कि कला यात्रा एवं कला दर्शन — तरुणा मल्लिक, डॉ. श्वेता पाण्डेय	31–41
4.	साहित्य जगत में रागमाला के चित्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन — गजेन्द्र सिंह, डॉ. श्वेता पाण्डेय	42–53
5.	Gender and Ethnic Differences in Aggression among College Students of Ranchi District - Kumari Ruby, Ishani Sinha	54–69
6.	Beyond the Canvas: Representation of Art Therapy in Contemporary Media and Its Psychological Implications - Gauri Pandey, Dr. Shweta Pandey	70–83
7.	Rearticulating Indian Advertising : The Creative Philosophy of Piyush Pandey and Ogilvy India - Maha Shweta Rai, Dr. Shweta Pandey	84–96

सम्पादकीय



‘कला सोपान मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल’ के जुलाई-सितम्बर 2025 अंक को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत प्रसन्नता एवं संतोष का अनुभव हो रहा है। यह केवल एक शोध पत्रिका का नया अंक नहीं है, बल्कि ज्ञान, जिज्ञासा, विमर्श और नवाचार की उस सतत यात्रा का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, जो समाज को अधिक जागरूक, विवेकशील और प्रगतिशील बनाने का कार्य करती है।

वर्तमान समय को यदि ज्ञान और सूचना का युग कहा जाए तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज समाज के समक्ष अनेक जटिल चुनौतियाँ उपस्थित हैं कृपयावरणीय संकट, तकनीकी परिवर्तन, सांस्कृतिक संरक्षण, शिक्षा की गुणवत्ता, सामाजिक असमानता, मानसिक स्वास्थ्य, कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव और वैश्विक स्तर पर बदलते आर्थिक एवं सामाजिक परिदृश्य। इन चुनौतियों का समाधान केवल पारंपरिक ज्ञान से संभव नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि हम तथ्यों, तर्कों, अनुभवों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित शोध को अपनाएँ। यही कारण है कि आज शोध केवल विश्वविद्यालयों और प्रयोगशालाओं तक सीमित गतिविधि नहीं रह गया है, बल्कि यह समाज के विकास का एक अनिवार्य उपकरण बन चुका है।

शोध का वास्तविक उद्देश्य केवल नई जानकारी प्राप्त करना नहीं है, बल्कि समाज को बेहतर समझना, समस्याओं की जड़ों तक पहुँचना और उनके व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करना भी है। एक स्वस्थ शोध संस्कृति किसी भी राष्ट्र की बौद्धिक शक्ति का परिचायक होती है। जिन देशों ने शिक्षा और अनुसंधान को प्राथमिकता दी है, उन्होंने विज्ञान, तकनीक, कला, संस्कृति और सामाजिक विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति प्राप्त की है। भारत भी आज ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर है और इस दिशा में शोध एवं नवाचार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

इस संदर्भ में युवाओं की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। युवा केवल राष्ट्र का भविष्य नहीं, बल्कि वर्तमान की सबसे सक्रिय और सृजनशील शक्ति हैं। उनके भीतर नई सोच, नए प्रश्न और स्थापित मान्यताओं को चुनौती देने का साहस होता है। शोध की दुनिया में यही जिज्ञासा और प्रश्नाकुलता नई

खोजों का आधार बनती है। आज आवश्यकता है कि युवा केवल सूचना के उपभोक्ता न बनें, बल्कि ज्ञान के सृजनकर्ता भी बनें। वे शोध के माध्यम से समाज की वास्तविक समस्याओं को समझें, स्थानीय संदर्भों का अध्ययन करें, अपनी सांस्कृतिक विरासत का दस्तावेजीकरण करें तथा नवीन विचारों और तकनीकों के माध्यम से विकास की नई दिशाएँ खोजें।

विशेष रूप से कला, साहित्य, संस्कृति, सामाजिक विज्ञान, शिक्षा और प्रौद्योगिकी जैसे बहुविषयी क्षेत्रों में शोध की संभावनाएँ असीमित हैं। आज बहुविषयी (Multidisciplinary) दृष्टिकोण की आवश्यकता इसलिए भी बढ़ गई है क्योंकि जीवन की समस्याएँ किसी एक विषय तक सीमित नहीं हैं। जब कला समाजशास्त्र से जुड़ती है, जब विज्ञान संस्कृति से संवाद करता है, जब शिक्षा तकनीक से समन्वय स्थापित करती है, तब नए विचार और नए समाधान जन्म लेते हैं। इसी सोच को केंद्र में रखकर 'कला सोपान मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल' विभिन्न विषयों के विद्वानों, शोधार्थियों और रचनात्मक चिंतकों को एक साझा मंच प्रदान करने का प्रयास कर रहा है।

इस अंक में प्रकाशित शोध लेखों को पढ़ते हुए यह अनुभव होता है कि हमारे शोधार्थी और लेखक न केवल अपने-अपने विषयों में गंभीर अध्ययन कर रहे हैं, बल्कि समाज और समय की आवश्यकताओं को भी समझ रहे हैं। प्रस्तुत शोधपत्रों में विविध विषयों, नवीन दृष्टिकोणों और गहन विश्लेषण का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। प्रत्येक लेख अपने भीतर एक नई संभावना, एक नया प्रश्न और एक नई दिशा समेटे हुए है। यह अंक ज्ञान-विस्तार और बौद्धिक संवाद की भावना को आगे बढ़ाने का एक सार्थक प्रयास है।

मैं इस अवसर पर सभी लेखकों, शोधार्थियों, समीक्षकों, संपादकीय सहयोगियों तथा उन सभी विद्वानों का हार्दिक अभिनंदन करती हूँ, जिन्होंने अपने अमूल्य योगदान से इस अंक को समृद्ध बनाया है। किसी भी शोध पत्रिका की गुणवत्ता केवल उसके संपादकीय प्रयासों से निर्धारित नहीं होती, बल्कि उसके साथ जुड़े लेखकों, समीक्षकों और पाठकों की सामूहिक प्रतिबद्धता से निर्मित होती है। आप सभी का सहयोग ही इस पत्रिका की वास्तविक शक्ति है।

शोध पत्रिकाएँ किसी भी अकादमिक समाज की जीवनरेखा होती हैं। वे नए विचारों को मंच प्रदान करती हैं, ज्ञान के आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करती हैं तथा शोध की गुणवत्ता को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। एक शोध पत्रिका केवल प्रकाशित लेखों का संग्रह नहीं होती, बल्कि वह बौद्धिक संवाद का एक जीवंत माध्यम होती है, जहाँ विचारों का परीक्षण, परिष्कार और

विस्तार संभव होता है। इसी कारण शोध पत्रिकाओं का संरक्षण और विकास अकादमिक जगत की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है।

‘कला सोपान मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल’ का उद्देश्य भी केवल शोधपत्र प्रकाशित करना नहीं, बल्कि शोध के प्रति सकारात्मक वातावरण का निर्माण करना है। हम चाहते हैं कि यह मंच युवा शोधार्थियों, शिक्षकों, कलाकारों, साहित्यकारों और स्वतंत्र चिंतकों के लिए एक ऐसा माध्यम बने, जहाँ वे अपने विचारों को अभिव्यक्ति दे सकें, नए विमर्शों को जन्म दे सकें और समाज के विकास में अपनी सक्रिय भूमिका निभा सकें।

अंततः, मैं सभी पाठकों, शोधकर्ताओं और शिक्षाविदों से आग्रह करती हूँ कि वे इस ज्ञान-यात्रा का हिस्सा बनें। अपने शोध, अनुभव और विचारों के माध्यम से इस पत्रिका को और अधिक समृद्ध करें। आपकी सहभागिता न केवल इस जर्नल को सशक्त बनाएगी, बल्कि शोध और ज्ञान की उस संस्कृति को भी मजबूत करेगी जिसकी आज हमारे समाज को अत्यंत आवश्यकता है।

आइए, हम सब मिलकर जिज्ञासा, शोध, नवाचार और ज्ञान के मूल्यों को आगे बढ़ाएँ तथा एक ऐसे समाज के निर्माण में योगदान दें जो विचारशील, वैज्ञानिक, संवेदनशील और रचनात्मक हो।

इसी आशा और विश्वास के साथ, मैं ‘कला सोपान मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल’ के इस अंक को आप सभी को समर्पित करती हूँ।



डॉ. श्वेता पाण्डेय

संपादक एवं अध्यक्ष कला सोपान

वानगॉग द्वारा लिखित पत्रों में कला का कलात्मक अध्ययन

अक्षय कुमार

एम.एम.ए., ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

डॉ. श्वेता पाण्डेय

सहायक आचार्य, ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

सारांश

वान गॉग की कला ऐतिहासिक कला शैलियों कला संबंधी सिद्धांतों या रचना के नियमों पर आधारित नहीं है। कला के इतिहास का परिशिलन करके उन्होंने अपनी कला का अध्ययन निश्चित नहीं किया, बल्कि पूर्ण मानवतावादी अध्यायन से प्रेरित होकर उन्होंने कला निर्मित की। वानगॉग के लिए कला एक साधन मात्र थी, जिसके निर्माण में उसने अपना जीवन अर्पण किया। वान गॉग ने लगभग 2000 से भी ज्यादा कलाकृतियों का निर्माण किया। वान गॉग को उत्तर प्रभाववाद का जनक माना जाता है। उनका जन्म 1853 ई० में नीदरलैंड में हुआ था।

वान गॉग की कला की विशेषता उनके चटकीले रंग, गहरे भाव और मोटी ब्रश स्ट्रोक्स हैं। विन्सेन्ट एक स्वप्नदृष्टा, रोमांटिक और अतिसंवेदनशील चित्रकार के रूप में जाने जाते हैं। वान गॉग की कला को उत्तरप्रभाववाद में रखा जाता है। वानगॉग का प्रेम कला और अपने भाई 'थियो' के प्रति अपार था। यह प्रेम वान गॉग द्वारा लिखित पत्रों से पता चलता। वान गॉग ने लगभग 600 से भी ज्यादा पत्र अपने भाई थियो को लिखा। इस लघु शोध में मैं यह प्रस्तावित करता हूँ कि हम वानगॉग के जीवन, कला, पत्र और विरासत का अन्वेषण करेंगे। इस लघु शोध के माध्यम से हम उनके चित्रों का विश्लेषण करेंगे, उनके जीवन के अनुभव को समझेंगे और उनकी कला के प्रभाव को देखेंगे।

प्रस्तावना

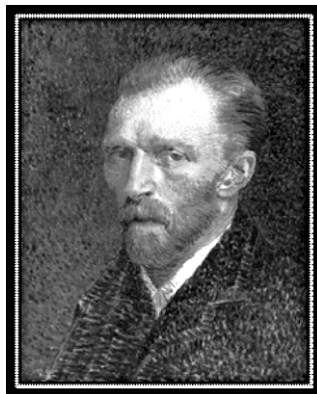
विन्सेन्ट एक महान डच चित्रकार थे जिन्होंने अपने अद्वितीय और अभिव्यंजक शैली से कला जगत में एक अमिट छाप छोड़ी। उनका जन्म 30 मार्च 1853 को ग्रॉटजुडर्ट, हॉलैंड में हुआ था। वान गॉग का जीवन संघर्ष और उतार-चढ़ाव से भरा पड़ा था लेकिन इसके बावजूद उन्होंने अपनी कला के

माध्यम से एक अनोखी दुनिया की रचना की। वानगॉग की कला के बारे में कला समीक्षा "युईद" ने लिखा है "उनकी कहानी सौंदर्य चकित आंखें, तूलिका या मिश्रण फलक की कहानी नहीं है, बल्कि एक ऐसे अकेले दिल की कहानी है जो अंधेरे बंदिवास में धड़क रहा था जो जानता नहीं था कि वह क्यों दुखी है, वह क्या चाहता है।" उनके चित्रों में रंग, आकार और बनावट का अद्वितीय संयोजन है जो दर्शकों को एक नए और अनोखे दुनिया में ले जाता है। वान गॉग की कुछ प्रसिद्ध चित्र निम्न हैरू— "स्टाररीनाइट", "सनफ्लावर्स" और "द पोटेटो ईटर्स"।

वान गॉग की कला व जीवन एक दूसरे से इतना घनिष्ठ संबंध रखते हैं कि दोनों का पृथक अध्ययन नहीं किया जा सकता। वान गॉग की धार्मिक संघर्षों, प्रेम की दुर्भाग्यपूर्ण खोज, मानसिक बीमारी के हमले और अपने छोटे भाई थीओ से अपार प्रेम वानगॉग के जीवन की संघर्षता को व्यक्त करती है। अतः मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस छोटे से शोधकार्य से आप सभी को प्रसन्नता हो।

परिचय

वान गॉग एक उत्तर प्रभाव वादि महान चित्रकार था। इसका पूरा नाम "विन्सेन्ट विमल वानगॉग" था। इसका नाम इसके पिता और दादा के नाम को मिला करके रखा गया था। यह एक डच कलाकार था। हॉलैंड के जन्मे विन्सेन्ट वान गॉग का जीवन, कला के लिए कलाको समर्पित ना होकर कला के भाव, दरिद्रता और निम्न लोगों के लिए सदैव समर्पित रहा। कला के लिए खुद को शहीद कर कला का एक अनूठा पहचान बनना वानगॉग से अच्छा उदाहरण और कोई नहीं हो सकता।



वानगॉग के पिता का नाम "थियो डॉर सवान गॉग" था। थियो डॉर अपने इलाके में बहुत प्रसिद्ध अध्यापक के तौर पर विख्यात थे। वान गॉग की माता का नाम "अन्ना कॉर्नेलिया कारबेंट्स" था। अन्ना कॉर्नेलिया दहेग की रहने वाली थी जहां उनके पिता को 'महामहिम सम्राट के जिल्दसाज' की पदवी हासिल थी। अन्ना कॉर्नेलिया कारबेंट्स के पिता का नाम "विलियम कारबेंट्स" था। विन्सेन्ट

वानगॉग की तीन बहनें 'अन्ना', 'एलिजाबेथ', 'विलेमीन' थीं। विन्सेन्ट वान गॉग का सबसे प्यारा भाई थियो था जो वान गॉग से 4 साल का छोटा था। थियो अपने भाई विन्सेन्ट को अपने लिए दुनिया का सबसे महत्वपूर्ण आदमी मानता था। विन्सेन्ट वान गॉग का जन्म 30 मार्च 1853 ईस्वी में जुन्डर्ट, हॉलैंड में हुआ था। बचपन से ही उनका चेहरा बेतुका और आक्रोश पूर्ण था। इनका भाई थियो जो विन्सेन्ट से लगभग 4 साल का छोटा था उसका जन्म 1 मई 1857 ई को हुआ था। इसके बाद एक और भाई 'कौर' था तथा उसके बाद इसकी तीन बहनें थीं। वान गॉग ने आरंभिक शिक्षा पूर्ण करने के बाद इन्होंने पादरी की शिक्षा ली तथा कुछ दिनों तक पादरी का पद भी संभाला। वान गॉग की आरंभिक कलापादरी के पद से निष्कासित होने के पश्चात आरंभ हुआ तत्पश्चात इन्होंने पत्रों में रेखा चित्र बनाना आरंभ किया और धीरे-धीरे इनकी रेखा चित्रों ने रंगात्मक चित्रणों ने ले ली। इन्होंने अपनी पत्र के माध्यम से कला का विस्तार पूर्वक विवरण दिया है। इन्होंने लगभग 600 से भी ज्यादा पत्र लिखे हैं।

कला की शिक्षा

वान गॉग अपनी कला को लेकर के बहुत चिंतित रहा करते थे। उसे लगता था कि जो वह कर रहा है वह ठीक तो है न और जो रेखाचित्र उसने बनाया है वह ठीक है न? अपने चित्रों में सुधार हेतु उसे एक गुरु की तलाश थी, पर वह किसके पास जाए? यह ऐसी भूख थी जो पिछली सर्दियों की किसी भी भूख से बड़ी भूख थी। अपने अंदर की लालसा को गुरु को अर्पण करने की थी। अपने काम के बारे में किसी गुरु या कलाकार से बात करने की थी, उसे यह जानने की लालसा थी कि क्या वह सही दिशा में जा रहा है या नहीं—333।

विन्सेन्ट को बैठे-बैठे रैवरैण्ड पीटरसन की याद आई जो की एक चित्रकार थे। वे अपने खाली समय में चित्र बनाया करते थे। विन्सेन्ट तुरंत अपनी चित्र "एक खदान मजदूर", "स्टॉक पर झुकी एक महिला" और "कोयला बिनती एक बुढ़िया" का चित्र लिया और निकल पड़ा। उसने कला की कुछ महत्वपूर्ण जानकारी रैवरैण्ड पीटरसन से प्राप्त की तथा अपनी कला को आगे की ओर बढ़ता रहा। कुछ समय बाद वह अपनी कला की वृद्धि के लिए "ब्रुसेल्स एकेडमी ऑफ फाइन आर्ट्स" बेल्जियम में प्रवेश लिया। वहां पर वान गॉग ने चित्रकला

तथा रंग सिद्धांतों की जानकारी प्राप्त की। उसके पश्चात उसने "एंटवर्प एकेडमी ऑफ फाइन आर्ट्स", बेल्जियम से चित्रकला और मूर्तिकला की शिक्षा प्राप्त की। पेरिस की "कोलारोसी अकादमी" में भी कुछ दिनों के लिए वान गॉग छात्र रहे। इसके अलावा वान गॉग ने कई अन्य कलाकारों और शिक्षकों से भी शिक्षा ग्रहण की जिनमें से कुछ प्रमुख हैं –

- | | |
|-------------------|----------------|
| – पॉल गोगिन | – कैमिल पिसारो |
| – जीन लियोन जेरोम | – होरेस लेकॉक |

इन शिक्षकों और संस्थाओं ने विन्सेन्ट वान गॉग की कलात्मक यात्रा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पत्रालेखन

पत्रों का सिलसिला सन् 1872 ई से पत्र लेखन की शुरुआत होती है तथा विन्सेन्ट की मृत्यु के कुछ दिन पहले तक लिखे जाते हैं। इस समय वान गॉग कुल 19 साल का था तथा थियो 15 साल का। 1872 और 1873 में लिखे गए उनके शुरुआती पत्र उनकी कला मर्मज्ञता की बेहतरीन मिसालें हैं। 20 जुलाई 1873 की लंदन की गोपिल्स गैलरी में बैठा वान गॉग अपने प्यारे भाई को एक पत्र लिखा जिसमें उसने अपनी संवेदनाओं को लिखा जो कला के प्रति उसके मन में उजागर हो रही थी।



इस प्रकार वान गॉग ने करीब सैकड़ों पत्र लिखे। पत्रों का सिलसिला जो करीब 17 साल तक चला, वे अद्भुत हैं। इन पत्रों के माध्यम से यह पता चलता है कि विन्सेन्ट वान गॉग कितना सचेत और ईमानदार था। वान गॉग के पात्रों की

तरह बहुत कम कलाकारों के पात्र आत्म प्रकटीकरण करते हैं और यह चयन करता हो कि उनके कलात्मक जीवन को समेटे हुए हो। वान गॉग के पत्र प्रत्येक के प्रताड़ित व्यक्ति के जीवन और कार्य के हर पहलू पर प्रकाश डालता है। एकबार वे अपने कक्ष में बैठे दीवारों पर लगी प्रिंट की नकले बना रहा था तब उसे कुछ बातें याद आई और वह तुरंत थिओ को एक पत्र लिखना शुरू किया।

“प्रिया थियो,

अगर मैं गलत नहीं हूँ तो तुम्हारे पास चित्रकार मिले का बनाए चित्र “द वर्क इन द फील्ड्स” चित्र अभी होगा। क्या तुम मुझे उसे डाक से भेज कर कुछ समय को उधार दे सकोगे। मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि इन दिनों में बॉसबूस और अलेबे के बनाए चित्रों की नकली कर रहा हूँ। अगर तुम उन्हें देखोगे तो शायद पूरी तरह असंतुष्ट नहीं होंगे। मुझे और भी कुछ भेज सको तो भेजना और मेरे लिए डरना मत। अगर ऐसे ही काम करता रहा तो मैं जल्दी ठीक राह पर आ जाऊंगा। अभी जब मैं तुम्हें यह लिख रहा हूँ तब मैं चित्र बना रहा था। मुझे उसे पूरा करने की जल्दी है सो शुभ रात्रि और कृपया प्रिंट्स जल्दी भिजवा देना”।

प्रमुख कलाकृतियां

वान गॉग ने 1885 में स्थिरजीवन चित्रों को चित्रित किया। इन्होंने अपने 2 साल के अंदर कई रेखा चित्र, जल रंग चित्र और 200 से भी अधिक तैल रंग चित्र चित्रित किया। वान गॉग के चित्रों में अधिकतर उदास पृथ्वी के रंग से गहरे भूरे रंग शामिल हैं। 1885 की शुरुआती में पेरिस के एक डीलर ने उनके चित्रों में रुचि दिखाई। मई में वान गॉग ने अपनी पहली प्रमुख कृति “द पोटेटो ईटर” और किसान चरित्र अध्ययनों की एक श्रृंखला के साथ प्रदर्शन किया। अगस्त में पहली बार वान गॉग की चित्रों की प्रदर्शनी सार्वजनिक रूप से किया गया। यह प्रदर्शनी “दहेग” में डॉलर ‘लेउर्स’ की दुकान की खिड़कियों पर लगाई गई थी। सितंबर 1885 में उन्होंने “एक युवा किसान महिला” (जो गर्भवती थी) को चित्रित किया। इस महिला के बारे में विन्सेन्ट ने अपने पत्र में लिखा है कि एक मजदूर महिला जो अपनी जीविका चलाने के लिए काम कर रही है, जो कुदाल लिए है और खेतों में धूप में काम कर रही है सिर्फ अपने बच्चे और सुखी डबल रोटी और कुछ खट्टे पनीर के लिए। यह महिला गर्भवती है फिर भी वह संघर्ष कर रही है। उसने

अपना लक्ष्य नहीं बदला है तो मैं क्यों बदलूँ? यह चित्र तैल रंग से बना है।

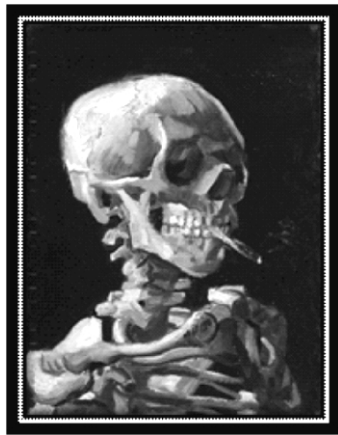


गर्भवती किसान महिला खुदाई करती।
(लगभग 1885, आर्ट गैलरी ऑफ ऑंटारियो)



खुली बाइबल और बुझी मोमबत्ती
(लगभग 1885, वानगॉग संग्रहालय)

वानगॉग कि कला के आरंभिक काल को (1880-86) डच काल कहा जाता है। इस काल में इन्होंने अपना पहली रंगीन चित्र आलू भक्षी जो 'की समर्थ पूर्ण चित्र' "डच कला" में बना है, का निर्माण किया। इस काल के सभी चित्रों को भुरे व हरे रंगों का प्रयोग करके बनाया गया। यह चित्र उदासीनता को दर्शाता है। आलू भक्षी चित्र वान गॉग कि एक सुप्रसिद्ध कलाकृति है।



जलती हुई सिगरेट के साथ कंकाल
(लगभग 1885-86, वानगॉग संग्रहालय, एम्स्टर्डम)



द पोटेटो ईटर्स/आलू भक्षी-आलू खाने वाले
(लगभग 1885, वान गॉग संग्रहालय, एम्स्टर्डम)

इस चित्र के माध्यम से वान गॉग ने उन निर्धन लोगों को दर्शाया है जो एक-एक पल जीवन के लिए कठोर संघर्ष करते हैं। दिन भर के संघर्ष के बाद जब सभी लोग अपने भोजन की तरफ आगे बढ़ते हैं तब अपने चेहरे पर एक लंबी विचार की

अनोखी वीणा झलक आती है। इस चित्र में दीपक के प्रकाश में कुछ लोगों को दिन के संघर्ष के बाद का खाना को खाते दर्शाया गया है। वान गॉग ने इस चित्र के बारे में अपने भाई थियो को पत्र लिख करके बताया।

लगभग 30 अप्रैल 1885,

प्रिया थियो,

जन्मदिन की हार्दिक शुभकामनाएं मेरे भाई थियो! तुम्हारा जन्म दिवस पर मैं उपहार के तौर पर एक चित्र "आलू खाने वाले लोग" का रेखा चित्र भेज रहा हूं जो शायद तुम्हें अधिक पसंद आएगा। यह चित्र पहले के मुताबिक अभी बहुत अच्छा बन रहा है। इस चित्र को मैं रंगीन भी बनाना चाहता हूं, तुम्हें इस चित्र को देखकर के अनुमान होगा कि मैं अब अपनी कला में उन्नति की ओर जा रहा हूं। मैंने इस चित्र द्वारा यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि यह जो निर्धन लोग दीपक के प्रकाश में हाथ डालकर आलू खा रहे हैं, उन्हीं हाथों से धरती को खुद कर अपनी आजीविका चलाते हैं। सुशिक्षित लोगों से बिल्कुल भिन्न रहना-सहना का इसमें दर्शन है और मैं नहीं सोचता कि हर दर्शक इसको पसंद करें। रुढ़ीबद्ध पद्धति से इस चित्र को चिकन हुआ आकर्षक बनाना आरोग्य होगा। कृषक जीवन के चित्र को सुगंध की क्या आवश्यकता है? ऐसे चित्र में यदि धुएं, गोबर व खाद की गंध आती है तो यह उचित ही है। "हां मैं मानता हूं कि मैं किसानों के चित्रकार हूं किंतु मैंने सिर्फ किसानों को चित्रित ही नहीं अपीतू उनकी भाव, दुखों, दर्दों को चित्रित किया हूं। जहां तक मैं समझ पा रहा हूं तो यह चित्र आपको अवश्य पसंद आएंगे। एक हाथ मिलाने के लिए धन्यवाद।



आलू भक्षी रेखा चित्र (पत्र में संलग्न रेखा चित्र)

सदैव आपका, विन्सेन्ट
विन्सेंट वान गॉग की
पेंटिंग 'रोने के ऊपर
तारों भरी रात' (Starry
Night Over the Rhône)
एक अत्यंत प्रसिद्ध और
प्रभावशाली कलाकृति
है, जिसे उन्होंने सितंबर

1888 में फ्रांस के आर्ल शहर में रहते हुए बनाया था। यह पेंटिंग उनकी अन्य प्रसिद्ध कृति 'The Starry Night' से अलग है, हालांकि दोनों में तारों भरी रात की कल्पना है। यह चित्र रोने नदी के किनारे से देखे गए एक शांत और सुंदर रात के दृश्य को दर्शाता है।



रौन के ऊपर तारों भरी रात , 1888द स्टाररी नाईट/तारों भरी रात, 1889 (म्यूसी डी ऑर्स, पेरिस)

तारों भरी रात चित्र वान गॉग ने 19 जून 1889 में बनाया था जब वह मानसिक अवसाद से ग्रस्त थे और सेंट- रेमी- डी- प्रोवेंस में एक के आराम गृह में रह रहे थे। तारों भरी रात चित्र में उनके कक्ष की पूर्व दिशा की ओर खुलने वाली खिड़की से दिखाई पड़ने वाली सूर्योदय के ठीक पहले की तारों भरी रात का चित्रण है जिसमें उनके द्वारा एक काल्पनिक गांव भी जोड़ा गया है। यह 1941 से न्यूयॉर्क शहर में "आधुनिक कला संग्रहालय" के स्थाई संग्रह में है। जिसे लिली पी० ब्लिस की वसीयत द्वारा यहां स्थापित किया गया। कला जगत में व्यापक रूप से यह रचना वान गॉग की मैग्निम ऑपस, अर्थात महान रचना मानी जाती है, और पाश्चात्य कला जगत के कुछ सबसे अधिक जाने-माने चित्रों में से एक भी माना जाता है। विन्सेंट वान गॉग की कालजयी कृति "तारों भरी रात" (The Starry Night, 1889) एक ऐसी पेंटिंग है जिसे न केवल उसकी कलात्मक उत्कृष्टता के लिए सराहा जाता है, बल्कि उसके गहरे सौंदर्यशास्त्रीय अर्थों के लिए भी देखा जाता है। यह चित्र वान गॉग की भीतरी मानसिक स्थिति का दृश्य रूपांतरण है। उनके भीतर का अशांत मन, प्रकृति की ऊर्जावान और गतिशील व्याख्या में सामने आता है। आकाश में घूमती लहरदार रेखाएँ, चमकते तारे,

चंद्रमा कृ सब कुछ मानो किसी अंतर्मन की बेचौनी और आशा का प्रतीक हो। यह चित्र केवल यथार्थ नहीं दिखाता, बल्कि आंतरिक भावनाओं को दृश्य भाषा में रूपांतरित करता है। यह सौंदर्यशास्त्र में भाव सौंदर्यका श्रेष्ठ उदाहरण है। वान गॉग ने इस चित्र में गहरे नीले, पीले और काले रंगों का प्रमुखता से उपयोग किया है।

- नीला कृ रहस्य, अकेलापन, शांति और दुःख
- पीला कृ आशा, ज्योति, ईश्वरत्व
- काला कृ अनिश्चितता, मृत्यु, अवचेतन

रंगों का यह प्रयोग केवल दृश्य आनंद नहीं देता, बल्कि मन में आध्यात्मिक भावनाएँ जगाता है। चित्र के हर तत्व में एक संगीतात्मक लय है। आकाश की सर्पिल आकृतियाँ, वृक्ष की लपट-सी आकृति, और गांव की शांति कृ सब मिलकर एक ऐसा सौंदर्य रचते हैं जो स्थिर होकर भी गतिशील है। सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह लयात्मकता दर्शक के अनुभव को ध्यानात्मक और गूढ़ बनाती है। वान गॉग ने तारों को केवल खगोलीय पिंड नहीं, बल्कि आध्यात्मिक शक्ति के प्रतीक की तरह चित्रित किया है। यह चित्र एक तरह का प्रार्थनात्मक दृश्य है, जिसमें मानव, प्रकृति और ब्रह्मांड के बीच एकता को महसूस किया जा सकता है।

कला में प्रभाव

वान गॉग की कला की शुरुआत ही दीन मजदूरों से हुई थी। जब उसे पादरी के पद से बर्खास्त कर दिया गया था तब वह एक आलसी और कामहीन व्यक्ति की तरह घूमता रहता था। वान गॉग एक भावनाप्रद व्यक्ति था जिस कारण उसे मजदूर की भावना और दर्द का आभास होता था तथा वह अपने चित्रों को इसी भावना और दर्द के साथ रेखाचित्र किया करता था। मजदूरों के जीवन से इतना प्रभावित था कि वह खुद को मजदूर ही समझता था। वान गॉग कि कला पर लोक जीवन का दीन दैन के जीवन और संघर्षों का अधिक प्रभाव है। वान गॉग की कला में प्रभववादि आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने प्रकाश और रंग के प्रभाव को अपने चित्रों में दर्शाया है। इन प्रभाव के संयोजन ने वान गॉग की कला को एक अनोखी और विशिष्ट शैली प्रदान की है जो उन्हें एक महान कलाकार के रूप में स्थापित करती है।

योगदान

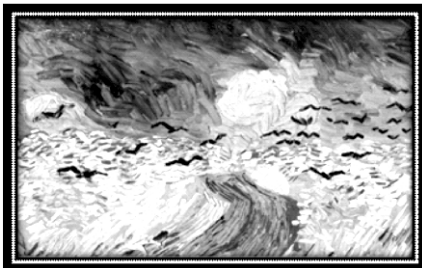
आज हम जीन कला को पढ़ और देख रहे हैं उसे जीवन्त बनाने का श्रेय वान गॉग को जाता है जो कि कला के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी कृतियां ने आधुनिक कला में अभिव्यंजनाववाद के उदय में योगदान दिया। उनकी कला से आधुनिकता का जन्म और उत्तरप्रभाववाद का विकास होता है। वान गॉग ने मानवीय भावनाओं का चित्रण अपने चित्रों में किया है। उन्होंने अपने चित्रों में खुशी, दुख, दर्द, संघर्ष और अन्य भावनाओं को दर्शाया है जो कला के क्षेत्र में बड़ा योगदान है। इन योगदानों ने वान गॉग को एक महान कलाकार के रूप में स्थापित किया और उनकी कला को दुनिया भर में प्रसिद्ध बनाया।

समाजिक प्रभाव

वान गॉग पर सामाजिक प्रभाव इस कदर पड़ा कि वह समाज के लिए एक पागल व्यक्ति बन गया। जीवन भर हार के अलावा उसे कुछ नहीं मिला। अपने जीवन में पांच बार बहुत ही बुरी तरीके से हारा था उसके बाद उसने कला को करना पसंद किया था। लोगों की सेवा करने की भावना ने उसे एक दीन व्यक्ति बना दिया था। दूसरों की दुख में दुखी होना तथा दूसरों की सुख में खुशी होना वान गॉग की आंतरिक भावना थी। समाज से प्रभावित होकर के उसने चित्रण कार्य को प्रारंभ किया और अपनी एक निजी शैली का विकास किया। अपनी शैली में कार्य को करते रहने से उनकी विश्व में प्रसिद्ध हुई। समाज में हो रहे गतिविधियों को उन्होंने चित्रित किया तथा अपने पत्रों के माध्यम से अपने भाई को उनकी खबरें भी देते रहें साथ ही पत्रों पर कुछ रेखा चित्र भी बनाकर के भेजा करते थे। दुखी मानव को दिखाना उनकी कला का ध्येय बन गया था।

अन्तिम कला

वान गॉग ने अपने जीवन की अंतिम क्षणों में भी कार्य करता रहा है। उसकी मानसिक स्थिति ठीक ना होने के कारण उसने आत्महत्या कर ली थी। उसने अपने अंतिम दिनों में एक चित्र को बना रहे थे जिसका नाम "द फोरबोमिंग कॉर्नफील्ड्स विद फ्लाइट ऑफ बर्ड्स" था। इसी चित्र को पूर्ण करने से पहले उसने खुद को गोली मार लिया था। मृत्यु से कुछ दिन पहले उन्होंने "स्टाररी नाइट" (तारों भरी रात) चित्र बनाई थी।



गेहूँ के खेत में कौवेविन्सेन्ट वान गॉग और थिओ वान गॉग की कब्र
(द फोरबोमिंग कॉर्नफील्डस विद फ्लाइट आफ बर्ड्स)

मृत्यु

27 जुलाई 1890 को वान गॉग ने अपनी अंतिम चित्र "गेहूँ के खेत में कौवे" के निर्माण स्थल पर खुद को गोली मार ली और दो दिन बाद उनकी मृत्यु 29 जुलाई 1890 को हो गई। विन्सेन्ट की मृत्यु से दुखी थिओ को डॉक्टर गैसे ने समझाया "हमे दुखी नहीं होना चाहिए— हम जो विंसेंट के दोस्त हैं"।

वान गॉग की मृत्यु वाले दिन ही उसकी सभी चित्रों की प्रदर्शनी लगाई गई। विन्सेन्ट के सभी चमकदार चित्रों के कारण उदास मनहूस कैफे एक सुंदर चर्च में तब्दील हो गया। विन्सेन्ट ने जब गोली मारी थी तब गोली उसकी छाती की फसलियों के बीच से निकाल करके उसके रीढ़ की हड्डी में जा फसा था। वान गॉग को जहां दफन किया गया वहां पर कुछ दिनों बाद डॉक्टर गैसे आए और वान गॉग के सबसे प्रिय फूल "सूरजमुखी" को लगा दिया। उसकी कब्र के चारों तरफ सूरजमुखी के फूलों को लगा करके उसे श्रद्धांजलि दी गई।

थिओ ने इतना ज्यादा रो लिया था कि उसके मुंह से किसी को धन्यवाद कहने तक की आवाज नहीं निकल रही थी। थिओ वापस घर पहुंचा। उसके भीषण दुख ने उसके दिनों और रातों को बराबर कर दिया। उसकी दिमाग पर जोर पढ़ने के कारण उसकी दिमाग की नस फट गई और वह बीमार पड़ गया। थिओ की पत्नी "योहाना" ने उसकी इलाज भी करवाई किंतु थिओ नहीं बचा। विन्सेन्ट की मृत्यु के 6 महीने बाद 25 जनवरी 1891 में उसकी भी मृत्यु हो गई। विन्सेन्ट को "आवेर्स" में दफनाया गया तथा थिओ को "यूटरैट" में दफनाया गया। किंतु कुछ समय बाद जब सात्वना के लिए योहाना अपनी बाइबल पढ़ रही थी

तब उसने "सैमुअल" में पढ़ा और अपनी मृत्यु में भी वे अलग नहीं हुए" तब वह थिओ के शरीर को भी "आवेर्स" ले आई और विंसेंट के बगल में दफना दिया। इस तरह से यह दोनों भाई फिर से एक साथ हो गए। दोनों भाइयों का एक दूसरे के प्रति अपार प्रेम देखते हुए समाज में प्रेम की परिभाषा उच्च हो गई।

निष्कर्ष

वान गॉग द्वारा लिखित पत्रों का अध्ययन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर आया हूँ कि जीवन में हार जीत तो होती ही रहती है किंतु अगर हम एकनिष्ठ होकर वान गॉग की तरह बिना थके आगे बढ़ते रहे तो जीवन में अपने मन मुताबिक आनंद को प्राप्त कर सकते हैं। इनके द्वारा लिखित पत्रों के अध्ययन से उनकी सरलता का परिचय मिलता है। इस लघु शोध के अध्ययन से मुझे वान गॉग और थिओ के अपार प्रेम तथा वान गॉग के कला दर्शन का पता चलता है। मैं अभी तक जितने भी पुस्तको और साहित्य की मदद से जो शोध करके लिखा हूँ उसके अनुसार वान गॉग एक डच चित्रकार तथा जीवनदर्शी व्यक्तित्व थे जिन्होंने अपने अद्वितीय और अभिव्यंजक शैली से कला जगत में एक अमिट छाप छोड़ी। उनकी कला में प्राकृतिक, मानवीय भावनाएं और आध्यात्मिक अनुभव का समावेश है, जो दर्शकों को एक नए और अनोखे दुनिया में ले जाता है। विन्सेन्ट वान गॉगकी कला—दृष्टि और दर्शन गहराई से उसकी आत्मा, संवेदना, और जीवन—संघर्ष से जुड़ी हुई है। उनका कला—दर्शन पूरी तरह से परंपरागत नियमों में नहीं बंधा था, बल्कि वह उनकी अंतरात्मा की आवाज और भावनात्मक उथल—पुथल की अभिव्यक्ति थी, जिन्हें वे खुद ही समझ पाते थे। वान गॉग की कला मुख्यतः भावनात्मक और अंतर्ज्ञानी थी। वह दृश्य यथार्थ को हूबहू चित्रित करने की बजाय, अपने अंतर्ज्ञान और आंतरिक अनुभव के आधार पर उसे प्रस्तुत करते थे। उनके चित्र दर्शाते हैं कि वह दृश्य वस्तु से अधिक उसकी अनुभूति को चित्रित करना चाहते थे।

वान गॉग ने प्रकृति को केवल बाह्य दृश्य के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे जीवन और आत्मा का दर्पण माना। उनके अनुसार, पेड़, आकाश, खेत व सब जीवंत और अर्थपूर्ण थे। वह इन साधारण वस्तुओं में भी ईश्वर की उपस्थिति अनुभव करते थे।

उन्होंने लिखा था : "If you truly love Nature] you will find beauty everywhere." भले ही वान गॉग को उनके जीवनकाल में ज्यादा मान्यता नहीं मिली, पर उनके कला-दर्शन ने आगे चलकर एक्सप्रेसनिज्म, पोस्ट-इंप्रेशनिज्म और आधुनिक कला आंदोलनों को प्रेरित किया। उन्होंने कला को यथार्थ से मुक्त कर भावों और व्यक्तिपरकता की ओर मोड़ा। उनके अनुसार, कलाकार का दर्द उसकी कृतियों में गहराई और सत्यता लाता है। वान गॉग का कला-दर्शन तर्क की बजाय हृदय, संवेदना और आत्मा की भाषा है। हम उनकी कला को एक आध्यात्मिक अन्वेषण, आत्म-अभिव्यक्ति, और मानव अनुभव की गहराइयों में उतरने का माध्यम मान सकते हैं। उनके चित्रों में रंग, रूप और रेखाएँ केवल सौंदर्य नहीं रचते, बल्कि वे जीवन के संघर्ष, आशा और अस्तित्व के प्रश्नों को भी उजागर करते हैं। वान गॉग का अटूट संघर्ष, जो आधुनिक जगत को एक संकेत देती है। मेरे अध्ययन अनुसार "कला के लिए कला का ध्येय" को तोड़कर वे वान गॉग ने भाव के लिए कला निर्मित की। इनके संघर्षपूर्ण जीवन से हमें भी अपने आप में संघर्ष करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। जब कोई व्यक्ति अपने चरम सीमाओं को पार करते हुए उन्नति की ओर जाता है तब दुनिया उसे पागल कहती है। ठीक उसी प्रकार वान गॉग के साथ हुआ। दुनिया उनको भी पागल कहने लगी, परंतु मेरा मांगना है कि अपने कार्य के प्रति एक निष्ठावान होना कोई पागलपन नहीं, बल्कि अपने कार्य के प्रति प्रेम को संलग्न करना है। अंत में मैं इस शोध के बारे में यह कहना चाहूंगा कि इस शोध को पूर्ण करने की कोशिश किया हूँ, किंतु किसी की व्यक्तित्व को कुछ पेजों में लिखकर के पूर्ण करना संभव नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- दलेटर ऑफ विन्सेन्ट वान गॉग : संपादक — रोनाल्डडीलीउ : अनुवादक — अर्नोल्ड पोमेरेन्स : पेंगुइन ग्रुप, पृष्ठ सं० 3 —15, 19 —50, 61 —285.
- विन्सैन्ट (लस्ट फॉर लाइफ का अनुवाद) : लेखक — अरविंद स्टोन : अनुवादक — अशोक पाण्डे : प्रथम संस्करण :2022, पृष्ठ सं० 17 — 191.
- प्रकाशन — संभावना प्रकाशन रेवती कुंज, हापुड़ — 245101
- आधुनिक चित्रकला का इतिहास : लेखक — र. वि. साखरकर : प्रकाशन — राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकैडमी प्लॉट नंबर 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, पृष्ठ सं० 96 — 106., जयपुर — 302004 दूरभाष — 2711129, 2710341
- द कम्प्लीट वान गॉग : लेखक — हल्स्कर जानय चित्र, स्नेचिंग आदि, न्यूयॉर्क 1980
- विन्सेंट और थिओ वान गॉग : एक संयुक्त जीवनी, एन आर्वर 1985 (संपादक) विन्सेंट वान गॉग की पौराणिक कथा, टोक्यो, एम्स्टर्डम और फिलाडेल्फिया 1993
- वान गॉग संग्रहालय, पेंटिंग और पेस्टलस, ज्वोले 1994, पाब्लो, फीके, विन्सेंट वान गाग के काव्य एल्बम, श्रृंखला 'कैहियर्स विन्सेंट', नं० 1 , एम्स्टर्डम और ज्वोले 1988 ई०
- "कला डिलर के रूप में थिओ वान गाग", पोस्ट — इप्रेश निजम में अध्ययन, 1986 पृष्ठ सं० 7 —115.

लक्ष्मी मंदिर के भित्ति चित्रों का कलात्मक अध्ययन

रौनक सिरौठिया

एम.एफ.ए., ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

डॉ. श्वेता पाण्डेय

सहायक आचार्य, ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रस्तावना

आदिकाल से ही मानव अपने भावनाओं को किसी न किसी माध्यम से व्यक्त करता आ रहा है। जिसमें चित्रकला माध्यम मुख्य है। जिसके सहयोग से मानव अपने समस्त अभिव्यक्तियों को व्यक्त करने में सफल रहा है। मानव और कला का संबंध घनिष्ठ है। प्राचीन भित्ति चित्र और कला स्मारकों में तत्कालीन इतिहास की प्रसिद्ध झाँकी देखने को मिलती है। वर्तमान समय में ओरछा में स्थित लक्ष्मी नारायण मंदिर में भित्ति चित्रों का एक व्यापक स्वरूप देखने को मिलता है। ओरछा में स्थित लक्ष्मी नारायण मंदिर तीन ओरछा मंदिरों में से सबसे महत्वपूर्ण मंदिरों में से एक है। जो की दिलचस्प पर्यटक आकर्षण है, यह मंदिर और किले का मिश्रित रूप एवं वास्तु कला के एक आदर्श और अनूठे मिश्रण को प्रदर्शित करता है।

चित्रों की दृष्टि से यह मंदिर सर्वाधिक समृद्धि है। इन भित्ति चित्रों में अत्यधिक धार्मिक विषयों का चित्रण किया गया है। इन चित्रों का काल संभवतः 17 वीं सदी से 19 वीं सदी के मध्य का है। मंदिरों की दीवारों की कला मुगल व बुंदेली रूप का यह एक मिश्रण है। लक्ष्मी नारायण मंदिर की नक्काशियां ज्यामितीय कार्य को प्रदर्शित कर रही हैं। लक्ष्मी नारायण मंदिर अनोखी स्थापत्य कला का एक शानदार उदाहरण है। सन 1622 में वीर सिंह जी देव द्वारा निर्मित और सन 1793 में पृथ्वी सिंह द्वारा पुनः निर्मित इस मंदिर की आंतरिक दीवारें पौराणिक विषयों के उत्कृष्ट भित्ति चित्रों के साथ सुसज्जित मिलती हैं। इन भित्ति चित्रों में प्राचीन खनिज रंगों का प्रयोग किया गया है।

लक्ष्मी नारायण मंदिर का परिचय

ओरछा किले से 2 किलोमीटर की दूरी पर लक्ष्मी नारायण मंदिर मध्य प्रदेश के ओरछा में स्थित है। सन 1622 ईस्वी में वीर सिंह जू देव द्वारा निर्मित श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर ओरछा के तीन सबसे महत्वपूर्ण मंदिरों में से एक माना जाता है। यह एक विशाल मंदिर है जो ओरछा किला परिसर के अलावा ओरछा में घूमने के लिए भी प्रसिद्ध है। यह ऐतिहासिक स्थानों में से एक है। यह मंदिर देवी लक्ष्मी

को समर्पित है जो हिंदू धन की देवी मानी जाती है और इस जगह का एक दिलचस्प पर्यटक आकर्षण भी है। इस मंदिर का पुनः निर्माण 1793 ई के द्वारा पृथ्वी सिंह द्वारा किया गया था। यह मंदिर और किले की वास्तुकला का एक आदर्श और अद्वितीय मिश्रण प्रदर्शित करता है।

मंदिर की संरचना आयताकार है जिसके चारों कोनों पर चार बहुमुखी उभरे हुए बुर्ज हैं। इसका निर्माण चूने के गारे और ईंटों से किया गया है। जिसमें युद्धों के द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली तोपों के लिए जगह भी है। आंतरिक सज्जा में ओरछा की सबसे उत्कृष्ट दीवार पेंटिंग शामिल है। तीन बरामदे की दीवारों और छत को स्पष्ट करते हुए यह भीति चित्र जीवंत रचनाएं हैं। और विभिन्न आध्यात्मिक और धर्मनिरपेक्ष विषयों को स्पष्ट करते हुए हैं। इन चित्रों के विषय रामचरितमानस के साथ-साथ 1857 ईस्वी में लड़े गए भारत के पहले स्वतंत्रता संग्राम युद्ध से लिए गए हैं। मंदिर की नक्काशी डिजाइनों को ज्यामितीय रूप में व्यवस्थित किया गया है। एवं फूलों पक्षियों और जानवरों से भित्ति चित्रों का अंकन किया गया है।

इस मंदिर की संरचना त्रिकोणीय त्रिभुज के समान नजर आती है। मंदिर के चारों ओर बरामदे हैं यह मंदिर दो मंजिला है तथा इसका शिखर तीन मंजिला है। मंदिर की दीवारों पर बने चित्र आपको आश्चर्य चकित कर देंगे। इस मंदिर की वेदी यानी आकार में बनाई गई है।

प्रमुख भित्ति चित्रों का वर्णन

1. भगवान विष्णु एवं माता लक्ष्मी

यह संपूर्ण चित्र लक्ष्मी नारायण मंदिर के प्रमुख भित्ति चित्रों में से एक है। जिसमें भगवान विष्णु अपने सात मुखी सर्प सैया पर आराम की मुद्रा में हैं तथा देवी लक्ष्मी उनके पैरों की ओर बैठी हुई है। यह स्थिति भगवान विष्णु व माता लक्ष्मी के बीच वार्तालाप की स्थिति है। इस चित्र में साथ ही ब्रह्मा जी को भी दिखाया गया है। इसका बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है।



(भगवान विष्णु एवं माता लक्ष्मी)



(भगवान कृष्ण बांसुरी बजाते हुए)

2. भगवान कृष्ण बांसुरी बजाते हुए

इस चित्र का चित्रण अत्यंत ही मनोरम है इस चित्र में भगवान कृष्ण को मध्य में दिखाया गया है। तथा वह बांसुरी बजा रहे हैं दोनों तरफ गोपियों का चित्रण किया गया है। कृष्ण भगवान के सिर पर एक सुंदर मुकुट स्थित है तथा कमर पर एक सुंदर करधनी बनी हुई है। यह चित्र भगवान कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम को दर्शाता है।

3. माता लक्ष्मी

इस चित्र में माता लक्ष्मी के दोनों तरफ हाथियों का चित्रण किया गया है। इस चित्र में हल्के रंगों का प्रयोग हुआ है। यह चित्र माता लक्ष्मी को समर्पित है।



(माता लक्ष्मी)



(गणेश जी)

4. गणेश जी

यह चित्र भगवान गणेश को समर्पित है तथा यह भित्ति चित्र में केंद्र में स्थित है। भगवान गणेश सिंहासन पर विराजमान है। चित्र में एक तरफ दो स्त्रियों का चित्र तथा दूसरी ओर ज्यामितीय आकृति में एक चौड़ा बॉर्डर बना हुआ है। एवं स्त्रियों को सुंदर वस्त्र पहने हुए दिखाया गया है।

5. वार्तालाप करते हुए राजा एवं रानी

इस चित्र में राजा एवं रानी एक दूसरे को पुष्प देते हुए अंकित किए गए हैं। इस चित्र में प्रेम को प्रदर्शित किया गया है। जिसमें गेरुआ रंग का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। चित्र के चारों तरफ एक बॉर्डर बनाया गया है जिसमें बेल बूटों द्वारा अलंकरण का सुंदर चित्रण किया गया है।

6. अलंकरण

लक्ष्मी नारायण मंदिर में सर्वाधिक चित्रण अलंकरण का हुआ है। भित्तियों के चारों तरफ चौड़े बॉर्डर के साथ पुष्प एवं पक्षियों का सुंदर अलंकार किया गया है। अलंकरण में गेरुआ रंग को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। यहां पर प्राप्त हुए

ज्यादातर भित्ति चित्रों में हमें अलंकरण देखने को मिलता है। अलंकरण में बहुत ही बारीकी से कार्य किया गया है।

7. हनुमान जी

इस चित्र में हनुमान जी के साथ भगवान राम को चित्रित किया गया है। साथ ही लक्ष्मण जी को भी दर्शाया है। इस चित्र में भगवान राम को धनुष चलते हुए चित्रित किया गया है। चित्र में चटकीले रंगों का प्रयोग हुआ है। इस चित्र में भक्ति रस का अनुभव मिलता है।

8. नायिका

लक्ष्मी मंदिर की प्रवेश द्वार पर यह चित्र अंकित किया गया है। इस चित्र में नायिका को केश सज्जा करते हो दर्शाया गया है। नायिका की दाईं तरफ एक दासी को दिखाया गया है जो आईने को लिए हुए खड़ी है। इस चित्र में गेरुआ रंग का प्रयोग हुआ है।

भित्ति चित्रों की विशेषताएं

- भित्ति चित्र कई मायनों में ग्राफिक कला के अन्य सभी रूपों से भिन्न है जैसे— ग्राफिक कला मुख्य रूप से डिजिटल या प्रिंट (मशीनों द्वारा निर्मित), आधारित है जबकि भित्ति चित्र हाथों से, ब्रश एवं खनिज रंगों के उपयोग से सीधे भित्ती पर बनाए जाते हैं।
- अपने विशालता के कारण भित्ति चित्र अद्वितीय है वह कागज पर उचित होने के लिए बहुत विशाल हैं और उन्हें गुफाओं और मंदिरों जैसी बड़ी संरचनाओं की दीवारों पर चित्रित किया जाता है।
- हिंदू धर्म , बौद्ध धर्म , और जैन धर्म भित्ति चित्रों के प्रमुख विषय रहे हैं।
- भारतीय भित्ति चित्रों की अभिव्यंजकता व्यापकता सार्वजनिक व्यावहारिक प्रचुर है।
- टेराकोटा चाक लाल गेरु और पीले जैसे प्राकृतिक संसाधनों को पशु वसा के साथ मिलाकर प्राचीन भारतीय भित्ति चित्रों में इस्तेमाल किया जाने वाले रंग द्रव्य को बनाने के लिए उपयोग किया जाता था।
- भित्ति चित्रों में मुख्यता खनिज रंगों का प्रयोग किया गया है।
- भित्ति चित्रों का समय काल सबसे अधिक विशाल एवं ऐतिहासिक माना जाता है।

तकनीक

मध्यकाल में कलाकारों के समक्ष कला हेतु उपयुक्त कला माध्यम अथवा

आधार प्राप्त न होने के कारण चित्रकार ने भित्ति पर ही अपने कला रुचि का प्रदर्शन किया किंतु भित्ति में अत्यधिक छेद्र व उठाव होने पर उसे एक समान सपाट चिकना बनाने का प्रयास निरंतर करते रहे। और अपने विभिन्न योग्यता को प्रदर्शित करते रहे। कंकड़ीले पत्थर बिछुआ पत्थर जिसे चूना पत्थर भी कहा जाता है। उसे एकत्र कर बड़ी भट्टी में भुंजा जाता था। तत्पश्चात इन्हें चक्की में डालकर बेलों द्वारा पीसकर चूने गारे पलस्तर को तैयार किया जाता था। भुने बिछुआ पत्थर को मोटा पीसकर चावल के दाने के समान भित्ति की चूगाई करते थे।

तत्पश्चात इस गारे को और अधिक बारीक पलस्तर करने के बाद उसे कास्ट पट्टिका से पीट-पीटकर एक सी सीधी सपाट भित्ति पर उपयोगिता अनुसार तैयार की जाता था। अधिक चिकनी भित्ति की आवश्यकता होने पर इस गारे को पुनः पीसा जाता था। और पतले लेप को भित्ति पर लेप कर चिकने पत्थर या संगमरमर के टुकड़े से घिसाई कर सतह को चिकना व चमकदार बनाया जाता था। इस प्रकार के गारे के लेप से भित्ति की मोटाई 1 इंच और बढ़ जाती थी। इस पद्धति के चित्र लक्ष्मी मंदिर के भित्ति पर प्राप्त होते हैं। लक्ष्मी मंदिर के भित्ति चित्र फ्रेस्को पद्धति के हैं।

इसका इतालवी भाषा में अर्थ पेंटिंग ऑफ फ्रेश अर्थात् गीली भूमि पर चित्रांकन करना होता है। इस पद्धति में चित्रांकन गीले पलस्तर में नुकीली तूलिका द्वारा तुरंत किया जाता है अंतिम चित्र तक सतह का गीला रहना आवश्यक होता है। इतनी कठिनाइयों के बाद भी इन चित्रों में सजीवता व स्पष्टता ज्ञात होती है। यह भी ज्ञात होता है कि पलस्तर में कौड़िया कूट पीस कर गेरू, राम- रज, हीरौंजी, लाजवर्दी, सिंदूर, काजल आदि सामग्री का मिश्रण का लेप भी लगाया जाता था।

शोध विधि

इस शोध कार्य में प्रयुक्त की गई शोध पद्धति गुणात्मक का प्रयोग किया गया है। इस पद्धति में गैर संख्यात्मक डेटा का उपयोग करके भारतीय चित्रकला एवं स्थापत्य के दृष्टिकोण से ऐतिहासिक कला को जानने के लिए किया जाता है। अध्ययन का उद्देश्य

- लक्ष्मी नारायण मंदिर के भित्ति चित्रों का कलात्मक अध्ययन करना है।
- भित्ति चित्रों में प्रयोग किए गए खनिज रंगों के प्रभाव का उल्लेख करना है।
- ऐतिहासिक चित्रकला को वर्तमान समय में प्रकाशित करना है।

- ओरछा की स्थापत्य एवं कला का संक्षिप्त वर्णन करना है।
- लक्ष्मी मंदिर के भित्ति चित्रों में धार्मिक एवं पौराणिक विषयों का अध्ययन करना है।



(लक्ष्मी मन्दिर, ओरछा)

साहित्य समीक्षा

- डॉ. अरुणा ने अपने पीएचडी शोध प्रबंध में ओरछा में स्थित लक्ष्मी नारायण मंदिर के भित्ति चित्रों का कलात्मक वर्णन किया है।
- निशांत कुमार एवं डॉ. अनुभा श्रीवास्तव (रिसर्च स्कॉलर बुंदेलखंड यूनिवर्सिटी झांसी प्रोफेसर गवर्नमेंट गर्ल्स डिग्री कॉलेज)। ने ओरछा के स्थापत्य पर एक लेख प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने लक्ष्मी मंदिर की वास्तुकला का उल्लेख किया है।
- डॉ. अंजलि पांडे (संगठन प्रबंधक एवं एच.ओ.डी. ड्राइंग एंड पेंटिंग डिपार्टमेंट गवर्नमेंट एम.एल.बी. गर्ल्स पी.जी. कॉलेज)। इन्होंने अपने शोध प्रबंध में लक्ष्मी मंदिर की संपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की है।
- शिखा गुप्ता एवं अमन साहू (ट्रेडिशनल आर्किटेक्चर ऑफ ओरछा) पर लेख प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने लक्ष्मी नारायण मंदिर के मानचित्र को दर्शाया है।
- डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा एवं डॉक्टर संजीव कुमार दृ ने ओरछा के साहित्य पर लेख प्रकाशित किया जिसमें लक्ष्मी मंदिर स्थापत्य का विवरण है।
- राजेश मिश्रा इन्होंने ओरछा के विषय में एक लेख प्रस्तुत किया है जिसमें उन्होंने लक्ष्मी मंदिर की वास्तुकला एवं व्यक्ति चित्रों का उल्लेख किया है।

निष्कर्ष

भारतीय चित्रकला परंपरा में भित्ति चित्रों का विशेष स्थान रहा है। प्रागैतिहासिक गुफा चित्रों से लेकर मंदिरों, महलों तथा दुर्गों की भित्तियों पर अंकित चित्रों तक भारतीय कलाकारों ने अपने समय के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक जीवन को चित्रात्मक रूप में अभिव्यक्त किया है। ओरछा स्थित लक्ष्मी नारायण मंदिर के भित्ति चित्र इसी समृद्ध परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ी हैं, जो बुंदेलखंड की कला, संस्कृति तथा स्थापत्य विरासत को समझने का सशक्त माध्यम प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि लक्ष्मी नारायण मंदिर केवल एक धार्मिक स्थल नहीं है, बल्कि यह चित्रकला, स्थापत्य एवं सांस्कृतिक इतिहास का जीवंत संग्रहालय है। मंदिर की दीवारों, छतों तथा बरामदों पर अंकित भित्ति चित्र तत्कालीन समाज, धार्मिक आस्थाओं, राजकीय जीवन तथा लोक संस्कृति के विविध आयामों को उद्घाटित करते हैं। इन चित्रों में भगवान विष्णु, माता लक्ष्मी, श्रीकृष्ण, गणेश, राम-हनुमान जैसे धार्मिक एवं पौराणिक विषयों के साथ-साथ राजा-रानी, सेवक-सेविकाओं, पशु-पक्षियों तथा अलंकरणात्मक रूपांकनों का भी प्रभावशाली चित्रण प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि कलाकारों ने धार्मिक भावनाओं के साथ-साथ सांसारिक जीवन को भी समान महत्व प्रदान किया है।

कलात्मक दृष्टि से इन भित्ति चित्रों में बुंदेली एवं मुगल शैली का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। चित्रों की रेखांकन शैली, आकृतियों की गठन प्रक्रिया, वस्त्राभूषणों का अंकन, अलंकरणात्मक विन्यास तथा रंग संयोजन तत्कालीन कलात्मक प्रवृत्तियों को प्रतिबिंबित करते हैं। विशेष रूप से गेरुआ, लाल, पीले, नीले तथा अन्य खनिज रंगों का प्रयोग चित्रों को दीर्घायु एवं आकर्षक बनाता है। रंगों की यह परंपरा भारतीय चित्रकला की प्राचीन तकनीकी दक्षता को भी प्रमाणित करती है।

अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि लक्ष्मी नारायण मंदिर के भित्ति चित्र फ्रेस्को तकनीक से निर्मित हैं, जिसमें गीले पलस्तर पर चित्रांकन किया जाता है। यह प्रक्रिया अत्यंत श्रमसाध्य एवं कौशलपूर्ण होती है। चित्रों की वर्तमान अवस्था को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन कलाकारों को सामग्री, तकनीक तथा सौंदर्यबोध का गहन ज्ञान था। अनेक चित्र समय के प्रभाव, प्राकृतिक क्षरण तथा संरक्षण के अभाव में धूमिल हो चुके हैं, फिर भी उनमें निहित कलात्मक अभिव्यक्ति आज भी दर्शकों को आकर्षित करती है।

यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि ओरछा के भित्ति चित्र केवल कला के नमूने नहीं हैं, बल्कि वे इतिहास, धर्म, समाज और संस्कृति के दस्तावेज के रूप में भी महत्वपूर्ण हैं। इन चित्रों के माध्यम से तत्कालीन जीवनशैली, धार्मिक विश्वास, राजकीय संरचना तथा लोक परंपराओं का अध्ययन किया जा सकता है। इसलिए इनका संरक्षण केवल सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा नहीं, बल्कि हमारी ऐतिहासिक स्मृति के संरक्षण का भी कार्य है।

वर्तमान समय में आवश्यकता है कि लक्ष्मी नारायण मंदिर के भित्ति चित्रों का वैज्ञानिक संरक्षण, डिजिटलीकरण तथा विस्तृत प्रलेखन किया जाए, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ इस अमूल्य विरासत का अध्ययन कर सकें। साथ ही कला इतिहास, पुरातत्व, पर्यटन तथा सांस्कृतिक अध्ययन के शोधार्थियों को इस क्षेत्र में और अधिक शोध कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

अंततः कहा जा सकता है कि लक्ष्मी नारायण मंदिर के भित्ति चित्र बुंदेलखंड की सांस्कृतिक अस्मिता, कलात्मक उत्कृष्टता तथा ऐतिहासिक गौरव के अद्वितीय प्रतीक हैं। इनका अध्ययन भारतीय भित्ति चित्र परंपरा को समझने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है तथा भारतीय कला इतिहास में इनके विशिष्ट स्थान को स्थापित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- आचार्य, राकेश. संपूर्ण ओरछा दर्शन एवं ओरछा का इतिहास. झांसी: स्थानीय प्रकाशन, 2018।
- अग्रवाल, वासुदेव शरण. भारतीय कला. नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 2014।
- कुमारस्वामी, आनंद के. भारतीय एवं इंडोनेशियाई कला पर निबंध. नई दिल्ली: मुंशीराम मनोहरलाल, 2008।
- ब्राउन, पर्सी. Indian Architecture (Buddhist and Hindu Periods). नई दिल्ली: CBS Publishers, 2013.
- Sher] Catherine B- Architecture of Mughal India- New Delhi: Cambridge University Press, 2003.
- Aruna- Orchha Paintings- New Delhi: Sharada Publishing House, 2012.
- Michell] George- The Hindu Temple: An Introduction to Its Meaning and Forms- Chicago: University of Chicago Press. 1988.

- Kramrisch] Stella- The Hindu Temple- Delhi: Motilal Banarsidass Publishers, 2005.
- Gupta] Shikha & Sahu] Aman- “Traditional Architecture of Orchha” International Journal of Architecture and Planning] Vol- 6] Issue 2, 2021.
- पांडे, अंजलि. ओरछा की कला एवं स्थापत्य परंपरा (अप्रकाशित शोध प्रबंध), गवर्नमेंट एम.एल.बी. गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, झांसी ।
- शर्मा, प्रदीप कुमार एवं कुमार, संजीव. “ओरछा का साहित्य, संस्कृति एवं स्थापत्य.” भारतीय संस्कृति शोध पत्रिका, खंड 12, अंक 3, 2020 ।
- मिश्रा, राजेश. “ओरछा के मंदिरों की चित्रकला एवं स्थापत्य.” कला विमर्श, वर्ष 8, अंक 1, 2019 ।
- श्रीवास्तव, अनुभा एवं कुमार, निशांत. “ओरछा की स्थापत्य परंपरा का अध्ययन.” भारतीय कला एवं संस्कृति शोध पत्रिका, 2022 ।
- Archer] W- G- Indian Paintings from the Rajput Courts- London: Victoria and Albert Museum Publications] 1992.
- Harle] J- C- The Art and Architecture of the Indian Subcontinent- New Haven: Yale University Press, 1994.
- स्थानीय साक्षात्काररू
 - आचार्य श्री रामानुज, लक्ष्मी नारायण मंदिर, ओरछा ।
 - आचार्य अरविंद शास्त्री, ओरछा ।
 - हरी सेवक लाल (स्थानीय पर्यटन मार्गदर्शक), ओरछा ।
- भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI). Orchha Group of Monuments: Conservation and Heritage Reports- New Delhi: Archaeological Survey of India-
- मध्यप्रदेश पर्यटन विकास निगम. ओरछा : इतिहास, संस्कृति और पर्यटन. भोपाल: एम.पी. टूरिज्म प्रकाशन ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर कि कला यात्रा एवं कला दर्शन

तरुणा मल्लिक

एम.एफ.ए., ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

डॉ. श्वेता पाण्डेय

सहायक आचार्य, ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

सारांश

रवीन्द्रनाथ टैगोर एक बांग्ली कवि, कहानीकार, संगीतकार, नाटककार और चित्रकार थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिक बुराइयों जैसे बाल विवाह और दहेज प्रथा को भी उजागर किया। उन्होंने इतिहास आध्यात्म से जुड़ी कई किताबें भी लिखी थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने साहित्य के रचना में भारतीय संस्कृति से भी रूबरू कराया। उन्होंने लेखन की शुरुआत अपनी भाषा बांग्ला से की लेकिन बाद में उनमें से कई का अंग्रेजी में भी अनुवाद किया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर एकमात्र ऐसे कवि हैं, जिनकी दो दो रचनाएं दो देशों का राष्ट्रीय गान बनीं— भारत का राष्ट्रीय गान "जन गण मन...." और बांग्लादेश का राष्ट्रीय गान "अमर सोनार बांग्ला....." गुरुदेव की रचनाएं हैं। टैगोर अपनी साहित्य की रचना से देश भर में चर्चा का पात्र बनें।

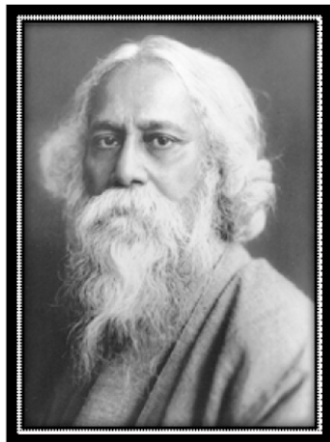
प्रस्तावना

रवीन्द्रनाथ टैगोर साहित्य जगत में सूर्य की भांति उच्च शिखर पर प्रकाशवान है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से संसार को प्रकाशमय कर दिया। उन्होंने अपनी प्रारंभिक कला को बाल सुलभ घटना मात्रा समझा, परंतु धीरे-धीरे रवीन्द्रनाथ ने अपनी कला को स्पष्ट रूपों को मूर्त रूप प्रदान करना प्रारंभ कर दिया। टैगोर ने जो कुछ भी आंका है उनमें प्राणों का भाव इतनी तीव्रता और प्रचुरता है कि आज के समय में सुप्रसिद्ध श्रेष्ठ कलाकारों की कृतियां भी उनके कलाकृतियों के सामने फिकी लगती हैं। उनके द्वारा लिखे गए काव्य काटे-छाटे अक्षर माला को भी चित्र तल पर उन्होंने स्थान दिया। उन्हें यह स्पष्ट रूपों में रुचि उत्पन्न होती है। अपने मनोभावों को चित्र तल पर उतरना प्रारंभ किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर दिन-रात अनवरत रूप से चित्र सृजन के कार्य में लगे रहे। उनके चित्रित चित्र विषय के अनुरूप ही उनके माध्यम में भिन्नता लिए हुए थे। प्रयोगात्मक स्वरूप रवीन्द्रनाथ ने रासायनिक रंगों के स्थान पर प्राकृतिक

रंगों को भी अपने चित्र तल पर स्थान दिया। उन्होंने चित्रकला के क्षेत्र में किसी भी परंपरागत शैली में बंध कर चित्रण कार्य नहीं किया। अपनी आत्मिक संतुष्टि हेतु ही वे चित्रकर्म में लीन रहे। उन्होंने किसी भी प्रकार के नियमों का पालन नहीं किया उनके चित्रांकन का तंत्र और शैली पूर्ण व्यक्तिगत थी।

परिचय

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म 7 मई 1861 ई० को कोलकाता के जोड़ासाको एक संपन्न संयुक्त ठाकुर परिवार में हुआ था। टैगोर अपने माता-पिता की 13वीं और आखिरी संतान थे। घर में उन्हें प्यार से 'रवी' बुलाया जाता था। उनके दादाजी का नाम द्वारिका नाथ टैगोर था। उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर एक धर्म सुधारक, विद्वान और ब्राह्मण समाज के नेता थे। उनकी माता का नाम शारदा देवी था। टैगोर का घर साहित्यिक और नाटक गतिविधियों का केंद्र था। टैगोर के सबसे बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ



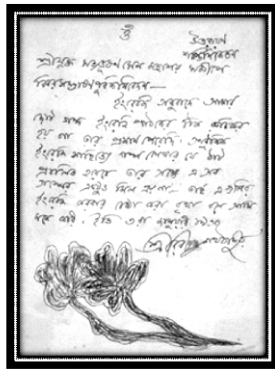
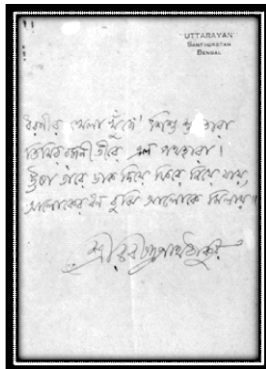
टैगोर एक दार्शनिक और कवि थे। दूसरे भाई सत्येंद्रनाथ टैगोर सिविल सेवा में नियुक्त थे। एक भाई ज्योतिरिन्द्रनाथ टैगोर संगीतकार और नाटककार थे। उनकी बहन स्वर्णकुमारी उपन्यासकार थी। उनके भाई हेमेंद्रनाथ टैगोर ने उन्हें पढ़ाया। इन सभी भाई बहनों में से रवीन्द्रनाथ टैगोर सबसे प्रसिद्ध और महान कवि थे। बचपन में टैगोर को चारदिवारी के भीतर स्कूली शिक्षा पसंद नहीं थी। उन्हें अंग्रेजी पसंद नहीं था। उनके पिता उन्हें उपनिषदों से मार्गदर्शन कराएँ।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा इंग्लैंड के पूर्वी ससेक्स के एक पब्लिक स्कूल में हुई। वे अपने पिता के इच्छा पूरी करने के लिए बैरिस्टर की पढ़ाई करने के लिए इंग्लैंड गए। हालांकि उन्हें स्कूली शिक्षा हासिल करने में ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी। बाद में उन्होंने कानून की पढ़ाई करने के लिए लंदन के यूनिवर्सिटी में दाखिला लिया लेकिन उनकी जगह उनकी रुचि शेक्सपियर को पढ़ने में ज्यादा रही। इसी दौरान उन्होंने अंग्रेजी आयरिश और स्कॉटिश साहित्य और संगीत का सार भी सीखा। लंदन में टैगोर का मन नहीं लगता और वह भारत लौट आए। उन पर घर परिवार की जिम्मेदारियां डाल दी तथा उनका विवाह मृणालिनी देवी से

करवा दिया गया। टैगोर ने अपने जीवन काल में कविता, नाटक, लघु कथा, उपन्यास, कहानी तथा गीतों की रचना की। 60 के दशक में टैगोर ने चित्रकला की यात्रा शुरू की। हालांकि बचपन में उन्हें कला में कोई रुचि नहीं थी। उन्हें कला की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं मिली थी। फिर भी टैगोर ने कला के क्षेत्र में अपना विकास किया। कला जगत को एक अमूर्त रूप प्रदान किया। अपनी कला के दौरान देश-विदेश में यात्रा तथा अपनी कला की प्रदर्शनियां भी लगाईं। अपनी कला के विकास में उन्होंने पेन और स्याही का सहारा लिया। कविताओं में होने वाली गलतियों के काट छांट से टैगोर ने चित्रण प्रारंभ किया। जिसमें एक अलग और अद्भुत अमूर्तता का दर्शन होता है। इनकी कला को देखते हुए इन्हें भारत का प्रथम रचनात्मक कलाकार भी कहा जाता है। इसी बीच उनकी रचनाएं काफी मशहूर होने लगी और बंगाली और विदेशी पाठकों के बीच बेहद लोकप्रिय हुई। 1913 ई० में उन्हें बड़ी कामयाबी मिली। जिसमें उन्हें साहित्य में "नोबेल" पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह नोबेल पुरस्कार टैगोर द्वारा रचित 'गीतांजलि' के लिए दिया गया था। 7 अगस्त 1941 ई० को टैगोर का निधन जोड़ासाको के उसी घर में हुआ जिस घर में उनका जन्म हुआ था।

कविता

रवीन्द्रनाथ टैगोर 8 साल की उम्र में ही कविता लिखना शुरू कर दिए थे। उनके द्वारा लिखी गई प्रथम कविता "अभिलाषा" है। जो 1874 ई० में "तत्त्वबोधिनी" पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। उस समय टैगोर की आयु 8 वर्ष थी। कुछ लोगों का मानना है कि उनकी प्रथम कविता "भारत भूमि" है। उनकी कविता में मानवतावाद, सहिष्णुता और वेदना दोनों समाये हुए हैं। उनकी कविताओं का सार विश्व बंधुत्व है। वे सरल शब्दों के साथ गहरे भाव वाले कवि थे। उनके काव्य में एक साथ साहस और सौंदर्य दिखता है।



टैगोर के लेख

उनके द्वारा लिखित कविताएं

- चीन्ही गो चीन्ही तोमाके, विदेशिनी — यह कौन विरहणी आती
- धीरे चलो, धीरे चलो — सोने के पिंजरे में नहीं रहे दिन
- होचितजहां भय—शून्यमाथे होउन्नत
- सोनारतोरी — पुरोबी

लघुकथा

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने किशोरावस्था में ही छोटी कहानी लिखना शुरू कर दिया था। उनके साहित्यिक जीवन "भिखारनी" से शुरू हुआ। अपने पेशे की शुरुआती दौर में उनकी कहानी उनके परिवेश को दर्शाती थी। उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक विषयों और गरीब आदमी की परेशानियों को शामिल करना भी एक मुद्दा बना लिया। उन्होंने हिंदू विवाह के नुकसान और उस समय देश में प्रचलित कुछ अन्य परंपराओं के बारे में भी लिखना। उनकी कई प्रसिद्ध लघु कहानियों में कुछ कहानियां निम्न हैं —

- काबुलीवाला, क्षुदिता, पाषाण, अटोत्जू, हैमंत, मुसलमानिरगोलपो आदि।

नाटक

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने नाटकों में अपने भावनाओं को व्यक्त किया है। उन्होंने अपने नाटकों में मानवता, ईश्वर—इंसान का संबंध और समाज सुधार जैसे विषयों पर चर्चा की है। नाटकों में भावनाओं को प्रमुखता दी गई है। टैगोर के द्वारा लिखित नाटकों के निम्न हैं —

- राजा, डाकघर, विसर्जन, मुक्त धारा, रक्तकारवी, अचलायतन आदि।

उपन्यास

रवीन्द्रनाथ टैगोर अच्छे उपन्यासकार भी थे। उन्होंने अपने उपन्यासों में मध्यम वर्गीय समाज, महिलाओं का उत्थान और प्रेम प्यार की कहानी दिखाई है। उन्होंने महिलाओं को सशक्त दिखाया तथा महिलाओं को अपनी इच्छा से जीवन जीने और पुरुष प्रधान समाज में अपनी पहचान बनाने पर उत्साहित किया। टैगोर के द्वारा लिखित उपन्यास निम्न हैं —

- गोरा, नोकाडुवी, चोखेर बाली, घरे—बाईरे, चतुरंगा, अन्तिम प्यार आदि।

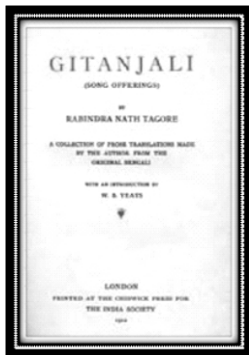


अवीन्द्र नाथ टैगोर के साथ गायन में मग्न रवीन्द्रनाथ टैगोर

गीतांजलि

उनके साहित्य साधना अनवरत रूप से चलती रही और महाकवि एवं साहित्यकार के रूप में उनका व्यक्तित्व निखरता गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लगभग 2,230 गीतों की रचना की, जिन्हें रवीन्द्र संगीत कहा जाता है। रवीन्द्र संगीत बांग्ला संस्कृति का अहम हिस्सा है। टैगोर के संगीत को उनके साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता। उनकी अधिकतर रचनाएं तो अब उनके गीतों में शामिल हो चुकी हैं, जिसमें सबसे प्रमुख गीतांजलि है। गीतांजलि उनका विश्व विख्यात ग्रंथ। गीतांजलि टैगोर की एक काव्य कृति है जो गीतों का संग्रह है। गीतांजलि शब्द "गीत" और "अंजलि" को मिलकर बना है, जिसका अर्थ है— गीतों का उपहार। गीतांजलि टैगोर की वह अमर कृति है जिसने उन्हें देश-विदेश में महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इस गीतांजलि का अंग्रेजी अनुवाद टैगोर ने आनंद के साथ किया था। इस कृति का अनुवाद विश्व की लगभग सभी भाषाओं में हो चुका है।

इसमें जिन गीतों का संग्रह है वह दिव्या भावनाओं से पूर्ण है। इन गीतों में इतनी सादगी है कि पाठक का हृदय अलौकिक आनंद व प्रकाश से भर जाता है।



गीतांजलि का एक चित्र 'मेरा अमर रूप जिसका नाम गीत है' के अंग्रेजी में

गीतों में असीम उल्लास और आनंद भरा है। गीतांजलि का प्रथम गीत

गीतांजलि का मुख्य पृष्ठ (1912) गीतांजलि की

कविता टैगोर के सुलेखन में

वंदना" (आमार माथा नतौकरेदाओ....) की प्रथम दो पंक्तियों में कवि कहते हैं —

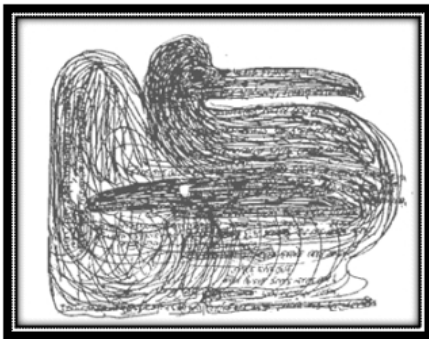
"मेरा मस्तक अपनी चरण धूलि तक झुका दो प्रभु !

मेरे समस्त अहंकार को आंखों के पानी में डूबा दो"।

चित्रकला

आयु के 67वें साल तक रवीन्द्रनाथ ने चित्रकला की दिशा में कोई विशेष प्रयत्न नहीं किए। वे विश्वविख्यात कवि बन चुके थे और उनकी प्रतिभा काव्यनिर्मित में व्यस्त थी। कविता लिखते समय शब्दों या पंक्तियों को रेखाओं से

मिटाने पर जो कल्पित आकर निर्मित होती उसकी ओर ध्यान आकृष्ट करके टैगोर कुछ दृश्य कल्पना में मगन होते। इन आकारों से वे इतने मोहित हुए की जिस कविता को लिखते समय आकार प्रकट हुए थे उसका अस्तित्व ही वे भूल गए। उन्होंने आकार के विकास पर ध्यान केंद्रित किया तो कला का आरंभ हुआ, जिसमें काल्पनिक पंक्षी या जानवर जैसे आकार प्रचुर मात्रा में हैं।



पांडुलिपि पर रेखा द्वारा पंछी अंकन

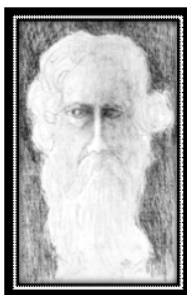
अंतिम समय में वे बहुत अधिक रचनात्मक हो गए और एक के दशक के भीतर 2500 से अधिक परिदृश्य, चेहरे और रेखाचित्र बनाएं। वे आदिम कला और जापानी कला के प्रति अत्यधिक आकर्षित थे। रूप की विकृति, रंगों का उपयोग और रेखाओं का संवेदनशील उनके चित्रों की विशेषता थी। टैगोर के लिए पांडुलिपि एक निजी एवं व्यक्तिगत अधिकार क्षेत्र है। इन आकस्मिक आकारों की उपस्थिति में जब अधिक स्वतंत्र अस्तित्व की मांग करना प्रारंभ किया तो कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर पूर्ण रूप से चित्रकला के क्षेत्र में आ गए।



शीर्षकहीन

उनकी कला में स्थिरता और गति दोनों दिखती है। उन्होंने अपने चित्रों में रचनात्मक स्वतंत्रता को दिखाया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लगभग 20,000 चित्र बनाए थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर की कला बालपन से लेकर व्यस्तता तथा आधुनिकता की ओर प्रगति करती हुई नजर आती है। उनके प्रमुख चित्रों में विचित्र जीव-जंतु, आत्मनिरीक्षण, कूदता हुआ हिरण, दृश्य चित्र, पंछी, मशीन मैन, चिड़िया, पंछी युगल हैं। एक "आत्म चित्र" की सृष्टि उन्होंने की है। उनके सभी चित्र शक्तिशाली वह प्रभावोत्पादक हैं। उनकी कला पूर्ण रूप से उनके प्रतिभा सम्पन्न आंतरिक जीवन की प्रतिमा है व उनके दर्शन में नैष्ठिक भारतीत्व है। उनकी कला निर्मिती के पीछे मौलिक कल्पना शक्ति और विशुद्ध सौंदर्य दृष्टि प्रेरणाभूत थी। जब उनको उनकी चित्रकला के बारे में पूछा गया तब उन्होंने कहा "मेरे जीवन का प्रभात गीतों भरा था, शाम रंग भरी हो जाए"। "आनन्द कुमार स्वामी" ने उनकी कला के विषय में लिखा है कि "उनके मौलिक सहज सिद्ध अभिव्यक्ति असामान्य नित्य युक्त प्रतिभा का साक्ष्य है"। उनके कला संबंधी विचार "पॉल क्ले" के विचारों से मिलते हैं। रवीन्द्रनाथ की कला ने विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों को साकार किया है। "थके हुए स्त्री", "मां व बच्चा", "सफेद धागे", "हेड स्टडी", "डॉसिंग वूमेन", "वूमेन फेस", "सेवेन फिगर्स", "वूमेन विद पलावर", "द लास्ट हार्वेस्ट", "टूवर्ड्स अमोर इम्पैथेटिक", "स्टैंडिंग फिगर" आदि चित्र शीर्षक हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी कला में अनेकों कलात्मक प्रयोग किये। उनकी कलात्मक प्रयोगों के आधार पर इनकी कला को निम्न भागों में बांटा जाता है –

- | | |
|------------------|-------------------------------|
| – नारी चित्रण | – जीव जंतुचित्रण |
| – प्रकृति चित्रण | – मुखाकृति चित्रण |
| – देहाकृतिचित्रण | – व्यक्ति चित्रण, आत्म चित्रण |



कला दर्शन

रवीन्द्रनाथ टैगोर का कला दर्शन भारतीय और पश्चिमी दोनों परंपराओं के प्रभाव से निर्मित है परंतु उसमें एक मौलिक और स्वतंत्र दृष्टिकोण भी है। उनके कला दर्शन में सौंदर्य, मानवता, प्रकृति और आत्मा का गहरा संबंध दिखाई देता है। रवीन्द्रनाथ के अनुसार सौंदर्य आत्मा की अभिव्यक्ति है, उन्होंने कला को केवल आनंद का स्रोत नहीं माना, बल्कि आत्मा की अनुभूति और ब्रह्म की अभिव्यक्ति के रूप में देखा है। उनका मानना था कि सच्चा सौंदर्य उस क्षण में प्रकट होता है, जब मानव आत्मा ब्रह्म के साथ एकाकार होता है, उन्होंने प्रकृति को न केवल सौंदर्य का स्रोत माना बल्कि मानव जीवन और सृजनात्मकता का प्रेरक तत्व भी कहा है। उन्होंने अपने चित्रों में प्रकृति को सौंदर्य आध्यात्मिक अनुभूति के साथ जोड़ा है।

उनका मानना था कि कला का उद्देश्य मानव को संपूर्णता की ओर ले जाता है। कला मानव को अलग से मुक्त कर सार्वभौमिक चेतना से जोड़ती है। उन्होंने कलात्मक रचना को मानवता के बीच सेतु के रूप में देखा और उनके अनुसार सच्ची कला वह है जो स्वाभाविक रूप से हृदय से निकले और आत्मा को स्पर्श करें उन्होंने पश्चिमी अनुकरण की आलोचना की और भारतीय संवेदनाओं और परंपराओं की रक्षा की।

प्रदर्शनी एवं पुरस्कार

रवीन्द्रनाथ ने अपना प्रथम प्रदर्शनी 1930 ई० में लगाया। यह प्रदर्शनी उनका एकल प्रदर्शनी था। इस प्रदर्शनी का आयोजन पेरिस में हुआ था। टैगोर के चित्रों की प्रदर्शनी पेरिस के गैलरी, 'पिगाल' में हुई थी। पेरिस में उनके चित्रों की प्रशंसा बहुत हुई। टैगोर की चित्र की प्रशंसा यूरोपीय प्रशंसकों व कला समीक्षा ने की। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बाद में इंग्लैंड, जर्मनी, स्विट्जरलैंड तथा अमेरिका जैसे देशों में भी अपनी चित्रों की प्रदर्शनी लगाई। सन 1932 ई० में उनके चित्रों की प्रदर्शनी कोलकाता में हुई। सन 1933 ई० में रवीन्द्रनाथ टैगोर के चित्रों की प्रदर्शनी मुंबई में लगाई गई तो भारतीय जनता दंग रह गए। एक जगह उन्होंने लिखा है, "लोग मुझे से मेरे चित्रों के अर्थ पूछते हैं, उद्देश्य पूछते हैं, उनके उत्तर में चित्रों की भांति 'मोन' से ही देता हूँ"। सन 1946 ई० में 'यूनेस्को' द्वारा आयोजित 'अंतरराष्ट्रीय आधुनिक कला प्रदर्शनी' में उनके चार चित्र सम्मिलित किये गये।

चित्रकारी तो रवीन्द्रनाथ टैगोर अपने जीवन के उत्तरार्ध में शुरू की किए

थे। 67 वर्ष की आयु पूरी करने के बाद रवीन्द्रनाथ टैगोर चित्रकला की तरफ मुड़े थे। कवि महानता की चरम सीमा तक चित्रकारी करने से पहले पहुंच गए थे। गीतांजलि ग्रंथ से सार पश्चिम प्रभावित हुआ था, तथा उनकी ख्याति बढ़ गई थी। सन 1913 ई० के नवंबर मास में उन्हें गीतांजलि के लिए प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। एक महीने बाद ही कोलकाता विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० लीट० की सम्मानार्थ उपाधि से विभूषित किया। सन 1915 ई० में भारत सरकार ने उन्हें नाइटहुड से सम्मानित किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर नोबेल पुरस्कार को पाने वाले प्रथम एशियावासी बने।



नोबेल पदक

कला की परिभाषा

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी कहा था कि 'प्रेम' से अधिक सुन्दर यहाँ कुछ भी नहीं है। कला में "आत्म चौतन्य" अपनेपन की प्रतिच्छाया मिलती है। अचेतन, स्थूल माध्यम में चेतना का चमत्कार दर्शाना—यही कला का कृतित्व है। इस प्रकार सुन्दर की अनुभूति में आत्मा का ही साक्षात्कार होता है। जिस रूप में प्रियतम आत्म चेतना का विलास नहीं वह अर्थहीन है। जब अर्थ ही नहीं है तो उसमें सत्य भी नहीं है। जो प्रिय तथा सत्य नहीं है, उसमें शिव अर्थात् शुभ का कैसे निवास हो सकता है। आत्माभिव्यक्ति ही कला का प्राण है, आत्मा का प्रकटीकरण है, प्रत्यक्ष रूप है, इसलिए कला में सत्यम्—शिवम् सुन्दरम् का अनुभव न हो, यह असम्भव है। भारतीय कला—दर्शन तथा सौन्दर्य दृष्टि का मूल तत्त्व ही सत्यम्—शिवम्—सुन्दरम् है।

कला सौंदर्य

रवीन्द्रनाथ के अनुसार सत्य और सौंदर्य एक ही वस्तु है। जो सत्य है वही सुंदर है। उससे आनंद प्राप्ति होती है। रवीन्द्रनाथ की मान्यता है कि सत्य में ही सौंदर्य बोध होता है लेकिन सत्य के द्वारा सौंदर्य का बोध तभी होता है जब हम उसकी प्राप्ति करें। रवीन्द्रनाथ ने सौंदर्य को शिव से भी जोड़ा है। सौंदर्य मंगल का प्रतीक है। वह कल्याणमयी है। सभी प्रकार के सुंदर मंगलमय नहीं होते बल्कि जो सौंदर्य अपनी पूर्णता पर पहुंचता है वही मंगलमय होता है। रवीन्द्रनाथ

टैगोर ने सौंदर्य को एक ऐसी शक्ति माना है जो सजीव है और हमारे मन को प्रभावित करती है। सौंदर्य का दूसरा गुण सौंदर्य बाह्य तत्वों में नहीं होता है अंतर में होता है। सौन्दर्य असीम अंतर का तत्व है, उसकी अभिव्यक्ति कलाकृति में होती है। सौंदर्य चिर सत्य है। सौंदर्य वस्तु का अवलम्बन लेकर प्रकट होता है इसलिए सौंदर्य में इच्छा-शक्ति का समन्वय रहता है इसीलिए सौंदर्य मुक्तिदायी तत्व है। सौंदर्य को देखने के लिए अतः चक्षुओं की आवश्यकता है। हम किसी वस्तु को सुंदर या असुंदर कहते हैं। परंतु हृदय से देखने पर वास्तु के असुंदर रूप को कोई अर्थ नहीं रहता। अनुभूतियां दो प्रकार की मानी जाती हैं— कलात्मक सौंदर्य अनुभूति एवं व्यवहारिक अनुभूतियां।

निष्कर्ष

विभिन्न पुस्तकों को पढ़ने के बाद मेरा— 'रवीन्द्रनाथ टैगोर की कला यात्रा तथा कला दर्शन' में यह निष्कर्ष निकल रहा — कला मन की अभिव्यक्ति है और इसका पूर्णतः परिचय रवीन्द्रनाथ टैगोर की कला को देखकर मिलता है। जीवन के अंतिम समय में आकर उन्होंने अपने मन की अभिव्यक्ति को पृष्ठभूमि पर उतारा। रवीन्द्रनाथ ने अपने आरंभिक कला यात्रा में चित्रण को खेलक्रीड़ा मात्रा समझा। इन्हीं खेलक्रीड़ा को उन्होंने अपने चित्रण का माध्यम बनाया। मुझे ऐसा लगता है कि रवीन्द्रनाथ कि यही कला यात्रा उनके कला दर्शन का परिचय देता है। रवीन्द्रनाथ ने अपने भाव को प्रकट करने के लिए साहित्य और संगीत का सहारा लिया। परंतु अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति करने के लिए उन्होंने चित्रण का सहारा लिया। रवीन्द्रनाथ के चित्रों में दर्शक रसानुभूति को प्राप्त करता हुआ आनन्द-सागर में गोते लगाता है। रसानुभूति प्राप्त करने का भाव ही रवीन्द्रनाथ के चित्रों का वैशिष्ट्य पक्ष है। उनके चित्रित रूपों की भाव-भंगिमायें व रेखायें अनुपम हैं, जो उनके चित्रों की व्यंजना को वैशिष्ट्य प्रदान करने में सहायक रही हैं। रवीन्द्रनाथ के चित्रों का आधार ही लय है। अपने इस मान्यता को रवीन्द्रनाथ ने स्वयं स्पष्ट किया है, "मेरे चित्र रेखाओं में मजबूती मेरी काव्यात्मकता है। यदि भाग्य से मेरे चित्र मान्यता प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं, तो यह प्राथमिक स्तर पर रूप में लय के महत्व के कारण होना चाहिए, जो परम् सत्य है"। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने आधुनिक कलाकारों को अमूर्त की ओर बढ़ने को प्रेरित किया। इन्होंने आत्म अभिव्यक्ति की रचना की तथा किसी रचना को प्रेरणा स्रोत मानकर आधुनिक कलाकार आत्म अभिव्यक्ति के अनुसार चित्रण करते हैं।

मन की अभिव्यक्ति को पृष्ठभूमि पर उतारने के बाद उसको व्यक्त कर पाना मुश्किल है। तभी तो रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा 'लोग मुझे मेरे चित्र का अर्थ पूछते हैं, उद्देश्य पूछते हैं, उनके उत्तर— मैं चित्रों की भांति शमौनश से ही देता हूँ।' एक कला की विद्यार्थी होने के नाते मैं रवीन्द्रनाथ की कला दर्शन को पढ़कर यह समझी कि रवीन्द्रनाथ टैगोर से पहले ना ही कोई ऐसा कलाकार था, ना ही अभी के समय पर कोई ऐसा कलाकार है, जो रवीन्द्रनाथ टैगोर की कला को टक्कर दे सके। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने यथार्थवाद तथा परंपरावाद को अपनी कला के माध्यम से दूर किया तथा भविष्य में आने वाले कलाकारों को अभिव्यंजनावाद की ओर प्रेरित किया। यही कारण है कि उनकी कला शैली अपने आप में अनोखी है। इनकी गुणवत्ता को हम किसी बंधन या पेपर पर लिखकर के पूरा नहीं कर सकते, क्योंकि ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। इस शोध में मैं यथासंभव इनकी कला और व्यक्तित्व को उतारने की प्रयास की हूँ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- रवीन्द्रनाथ की कला सृष्टि : लेखक— रणजीत साहा, प्रशासन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, 2018य चित्र एवं रेखाचित्र
- भारतीय चित्रकला एवं मूर्ति कला का इतिहास : लेखक— डॉ० रीता प्रतापय प्रकाशक : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमीय 30वाँ संस्करण : 2019 (प्रतियाँ 1100) पृष्ठ सं० — 352 — 356
- समकालीन भारतीय कला : लेखक— डॉ० ममता चतुर्वेदी, प्रकाशन— राजस्थानी हिंदी ग्रंथ अकादमी, 11 व संशोधित संस्करण प्रकाशन (प्रतियाँ 3300), पृष्ठ सं० — 71 — 72
- आधुनिक भारतीय कला : लेखक— ज्योतिष जोशी प्रकाशक यश पब्लिकेशन प्रथम संस्करण : 2019, पृष्ठ सं० — 20 — 25
- भारत संदर्भ : प्रकाशन— सम्पादक, भारत सन्देश, 140 'ए' विंग शास्त्री भवन, नई दिल्ली—110001
- सौंदर्य शास्त्र : लेखक— डॉ०ममता चतुर्वेदीय प्रकाशन—राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुरय 19वाँ संस्करण : 2022 पृष्ठ सं० — 290 — 298
- आधुनिक चित्रकला का इतिहासरू लेखक — रत्नाकर विनायक साखलकरू प्रकाशक— राजस्थानी हिंदी ग्रंथ अकादमीय 39वाँ संस्करण : 2021 (प्रतियाँ 5500) य पृष्ठ सं० — 78
- विश्व मानव रवीन्द्रनाथ टैगोर लेखक : डॉ० नरेंद्र जादव

साहित्य जगत में रागमाला के चित्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

शोधार्थी – गजेन्द्र सिंह

ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

समन्वयक/शोध निर्देशिका – डॉ. श्वेता पाण्डेय

सहायक आचार्य, ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

सारांश

रागमाला चित्रकला भारतीय कला, संगीत और साहित्य के अद्भुत समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह केवल चित्रकला की एक शैली नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना की वह परंपरा है जिसमें संगीत के अमूर्त स्वरूप को रंगों, रेखाओं और मानवीय भावनाओं के माध्यम से मूर्त रूप प्रदान किया गया। साहित्य और संगीत को दृश्य अभिव्यक्ति देने की यह परंपरा भारतीय लघु चित्रकला की महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। रागमाला चित्रों में राग और रागिनियों को मानवीय रूप देकर उनके भाव, प्रकृति, ऋतु, समय और आध्यात्मिक अनुभूतियों को चित्रित किया गया है।

“रागमाला” शब्द का अर्थ है – रागों की माला अथवा स्वर और रंगों का क्रमबद्ध संयोजन। भारतीय संगीतशास्त्र में रागों को केवल ध्वनि या सुर तक सीमित नहीं माना गया, बल्कि उन्हें जीवंत भावनात्मक सत्ता के रूप में देखा गया। इसी अवधारणा के आधार पर चित्रकारों ने रागों और रागिनियों का चित्रण किया। प्रत्येक राग को किसी विशेष ऋतु, समय, मनोदशा और भाव से जोड़ा गया तथा उसके अनुरूप चित्र बनाए गए। उदाहरणस्वरूप मेघ राग में वर्षा, बादल और नाचते मोर दिखाए जाते हैं, जबकि दीपक राग में अग्नि और प्रकाश का प्रतीकात्मक चित्रण मिलता है।

रागमाला चित्रों की परंपरा मुख्यतः मध्यकालीन भारत में विकसित हुई और 16वीं शताब्दी से इसका व्यापक प्रसार हुआ। यह परंपरा विशेष रूप से राजस्थान, मालवा, मेवाड़, बूंदी, किशनगढ़, बीकानेर, कांगड़ा, चंबा तथा दक्कन क्षेत्रों में लोकप्रिय रही। मुगल, राजस्थानी और पहाड़ी चित्रशैलियों में रागमाला का समृद्ध चित्रण मिलता है। इन चित्रों का उद्देश्य केवल सौंदर्य प्रदर्शन नहीं था, बल्कि संगीत की आत्मा और उसके भावात्मक प्रभाव को दृश्य रूप में प्रस्तुत करना था।

रागमाला चित्रों में रागों को परिवार के रूप में भी दर्शाया गया है। सामान्यतः एक प्रमुख राग को परिवार का मुखिया माना जाता है, जिसकी छह रागनियाँ होती हैं। इनके अतिरिक्त राग पुत्र और पुत्रवधुएँ भी चित्रित की जाती थीं। इस प्रकार राग-रागिनियों का एक विस्तृत परिवार निर्मित होता था। समय के साथ इनकी संख्या 36, 42, 72, 84 और 108 तक पहुँच गई। यह व्यवस्था भारतीय संगीतशास्त्र और सांस्कृतिक प्रतीकों की गहनता को दर्शाती है। भारतीय संगीत के छह प्रमुख रागों – भैरव, दीपक, श्री, मालकौंस, मेघ और हिंडोला – का विशेष महत्व बताया गया है। प्रत्येक राग का अपना विशिष्ट भाव और वातावरण है।

1. भैरव राग गंभीर और शांत वातावरण का प्रतीक है।
2. दीपक राग अग्नि और प्रकाश का द्योतक है।
3. श्री राग वसंत ऋतु और शांति का प्रतिनिधित्व करता है।
4. मालकौंस आध्यात्मिकता और रात्रिकालीन गंभीरता से जुड़ा है।
5. मेघ राग वर्षा और उल्लास का प्रतीक है।
6. हिंडोला राग प्रेम और वसंत की मधुरता को व्यक्त करता है।

रागमाला चित्रों में केवल संगीत नहीं, बल्कि भारतीय जीवन और संस्कृति की झलक भी दिखाई देती है। इन चित्रों में प्रेम, भक्ति, विरह, प्रकृति, ऋतु परिवर्तन और मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण हुआ है। कहीं देवताओं की आराधना दिखाई देती है, तो कहीं प्रेमी-प्रेमिका के माध्यम से शृंगार रस की अभिव्यक्ति। इस प्रकार रागमाला चित्र केवल संगीत के दृश्य रूप नहीं हैं, बल्कि भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक भी हैं।

रागमाला चित्रकला का साहित्य से भी गहरा संबंध है। रीतिकालीन हिंदी कवियों – बिहारी, देव और पद्माकर आदि दृ ने अपने काव्य में रागमाला के भावों और प्रतीकों का उपयोग किया। संगीत, कविता और चित्रकला के त्रिवेणी संगम ने भारतीय कला को नई ऊँचाई प्रदान की। संस्कृत ग्रंथों, जैसे नाट्यशास्त्र, अभिनवभारती और आभिलाषितार्थ चिंतामणि में भी रागों और रागिनियों का उल्लेख मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि यह परंपरा प्राचीन सांस्कृतिक आधारों पर विकसित हुई। कलात्मक दृष्टि से रागमाला चित्रों की प्रमुख विशेषताएँ रंगों की समृद्धि, कोमल रेखांकन और प्रतीकात्मकता हैं। चित्रों में गेरुआ, पीला, हरा और नीला रंग प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं। ये रंग केवल सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि भावों की अभिव्यक्ति के लिए उपयोग किए गए।

चंद्रमा, कमल, वर्षा, मोर, वृक्ष और बादल जैसे प्रतीकों के माध्यम से प्रेम, आनंद, करुणा और उल्लास को व्यक्त किया गया है। कलाकारों ने संगीत की लय और भाव को दृश्यात्मक रूप देने का प्रयास किया, जिससे चित्रों में जीवंतता और भावात्मक गहराई उत्पन्न हुई।

इतिहास की दृष्टि से 17वीं और 18वीं शताब्दी रागमाला चित्रकला का स्वर्णकाल मानी जाती हैं। मेवाड़ शैली में साहिबदीन और चावंड शैली में निसारदीन जैसे चित्रकारों ने उत्कृष्ट रागमाला चित्र बनाए। अहमदाबाद, राजस्थान, मध्य भारत और दक्कन क्षेत्र इसके प्रमुख केंद्र रहे। 19वीं शताब्दी के बाद इस परंपरा में धीरे-धीरे गिरावट आई और 20वीं शताब्दी तक इसका ह्रास हो गया, किंतु आज भी भारतीय कला इतिहास में इसका स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मुख्य बीज—रागमाला चित्रकला, राग—रागिनियाँ, भावाभिव्यक्ति, ऋतु एवं समय

उद्देश्य

1. रागमाला चित्रकला की उत्पत्ति, विकास और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना। साथ ही रागमाला चित्रकला की मध्यकालीन परंपरा, विभिन्न चित्रशैलियों तथा उसके विकासक्रम का विश्लेषण करना है।
2. राग—रागिनियों के दृश्यात्मक स्वरूप और उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति का विश्लेषण करना। तथा रागमाला चित्रों में विभिन्न रागों के माध्यम से व्यक्त भाव, ऋतु, समय तथा मानवीय संवेदनाओं का अध्ययन करना।
3. रागमाला चित्रकला में संगीत, साहित्य और चित्रकला के समन्वय का अध्ययन करना। यह जानना कि भारतीय कला की विभिन्न विधाएँ किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़कर समन्वित सांस्कृतिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती हैं।
4. रागमाला चित्रों की कलात्मक विशेषताओं एवं प्रतीकात्मक तत्वों का मूल्यांकन करना। रंग योजना, रेखांकन, प्रतीकात्मकता, मानवीय आकृतियों तथा प्रकृति के उपयोग का अध्ययन करना।

साहित्य समीक्षा

साहित्य समीक्षा किसी भी शोध कार्य का महत्वपूर्ण भाग होती है, जिसके माध्यम से विषय से संबंधित पूर्व प्रकाशित पुस्तकों, शोधपत्रों और ग्रंथों का अध्ययन किया जाता है। रागमाला चित्रकला के संबंध में अनेक विद्वानों ने भारतीय संगीत, चित्रकला तथा साहित्य के संबंधों का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

1. भारतीय संगीत एवं कला के प्रारंभिक आधार के रूप में भरतमुनि द्वारा

रचितनाट्य शास्त्र में राग, रस तथा कला संबंधी सिद्धांतों का वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ में संगीत और कलाओं के सैद्धांतिक पक्ष को विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है, जो आगे चलकर रागमाला चित्रों की आधारभूमि बना और सबसे प्राचीन साक्ष्य इसी ग्रन्थ से प्राप्त होते हैं।

2. 10वीं शताब्दी में अभिनव गुप्त द्वारा रचित अभिनव भारती में विभिन्न रागों तथा उनके भावात्मक पक्षों का उल्लेख मिलता है। इसमें कला और सौंदर्यशास्त्र की व्याख्या रागमाला परंपरा को समझने में सहायक सिद्ध होती है।
3. 12वीं शताब्दी में राजा सोमेश्वर द्वारा रचित आभिलाषितार्थ चिंतामणि में छह प्रमुख रागों और उनकी रागिनियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ ने राग-रागिनियों के वर्गीकरण की परंपरा को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत की गई है।
4. भारतीय चित्रकला पुस्तक के अध्ययन में आनंद कुमार स्वामी ने भारतीय लघु चित्रकला और रागमाला चित्रों की सांस्कृतिक तथा कलात्मक विशेषताओं का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने अध्ययनों में यह स्पष्ट किया कि रागमाला चित्र केवल संगीत के दृश्य रूप नहीं हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति और सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति भी हैं।
5. रागमाला चित्रों के साहित्यिक प्रभाव को समझने के लिए रीतिकालीन कवियों जैसे बिहारी, देव तथा पद्माकर के काव्य का अध्ययन महत्वपूर्ण है। इनके साहित्य में रागमाला के भाव, प्रतीक और श्रृंगारिक तत्व स्पष्ट दिखाई देते हैं।
6. उपरोक्त साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि रागमाला चित्रकला केवल चित्रकला की एक शैली नहीं है, बल्कि भारतीय संगीत, साहित्य, संस्कृति और सौंदर्यशास्त्र के समन्वित स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है। उपलब्ध साहित्य विषय की ऐतिहासिक और कलात्मक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करता है, किंतु रागमाला चित्रों के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्रभाव पर अभी भी विस्तृत शोध की पर्याप्त संभावनाएँ विद्यमान हैं।

परिचय

साहित्य की दुनिया में शब्दों का बड़ा महत्व बताया गया है संगीत के क्षेत्र में छंदों को ऐतिहासिक धरोहर के रूप में संजोया गया है रागमाला का अर्थ रंगों की माला या स्वर छंदों को क्रमगत चित्रण की परिपाटी को रागमाला कहा जाता है। रागमाला नामक ग्रंथ कई राजाओं के शासन काल में, कई स्थान पर चित्रित किया गया है रागों को सुरीली मुद्राओं द्वारा दर्शाया जाता है स्वरों व आकृतियों

के क्रम परिवर्तन और संयोजन के रूप में परिभाषित किया जाता है। रागमाला चित्रकला की परंपरा का विकास मुख्य रूप से मध्यकालीन भारत में हुआ। इस परंपरा की शुरुआत 16वीं शताब्दी के आसपास मानी जाती है, जब भारतीय संगीत में राग और रागिनियों को भावनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाने लगा। रागमाला चित्रों का उद्देश्य इन रागों की आत्मा को रंगों और रेखाओं के माध्यम से दर्शाना था। ये चित्र मालवा, मेवाड़, बूंदी, और किशनगढ़ जैसी राजस्थानी शैली में प्रमुख रूप से बनाए गए।

रागमाला चित्रों में प्रत्येक राग और उसकी सहायक रागिनियों को मानव रूप में दर्शाया गया है, जो एक निश्चित भाव, ऋतु या समय का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए, दीपक राग को एक ऐसी आकृति के रूप में चित्रित किया जाता है, जो दीप जलाते हुए दिखाई देती है, जबकि मेघ राग को मानसून के बादलों और बारिश के साथ दिखाया जाता है।

रागमाला के चित्र दर्शक के मन को सुखद अनुभूति या आनंद उत्पन्न करने में सक्षम है राग-रागिनियों का मुख्य अन्तर यह है कि राग को ऊँचे स्वर में जबकि रागिनियों को स्त्रियोचित कोमलता के अनुरूप गाया जाता है। उसी के अनुरूप दृश्य रूप में रेखाओं एवं रंगों के माध्यम से दिखाया गया है। राजस्थानी, पहाड़ी व मुगल शैलियों में इस रागमाला चित्रण को काफी लोकप्रियता मिलती चली गई। राग-रागिनियों में पुत्र और पुत्र वधुओं तक को समाहित किया जाने लगा फलतः इसकी संख्या 72, 76, 80, 84 व 108 तक पहुंच गई। विदित हो कि आइने अकबरी में भी राग-रागिनियों का वर्गीकरण मिलता है। इस के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 16वीं सदी में राजस्थानी शैली में रागमाला चित्रण की प्रणाली की शुरुआत हो चुकी थी। संगीत में मुख्य छः राग हैं और प्रत्येक राग की छः पत्नियां और आठ राग पुत्र हैं जिन्हें राग के पुत्रों के रूप में पहचान मिली है मुख्य छः राग निम्नलिखित हैं।

- **भैरव राग** — इसे ग्रीष्म ऋतु के शांत और गंभीर वातावरण को दर्शाने वाला राग माना जाता है। रागमाला चित्रों में इसे एक शांत स्वभाव वाली स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है, जो प्राकृतिक दृश्यों के बीच बैठी होती है।
- **दीपक राग** — यह राग अग्नि और प्रकाश का प्रतीक है। चित्रों में इसे हाथ में दीपक पकड़े हुए व्यक्ति के रूप में दिखाया जाता है, जो उजाला फैलाता है।
- **श्री राग** — शांत रस से परिपूर्ण यह राग वसंत ऋतु का प्रतिनिधित्व करता

है। चित्रों में इसे एक राजा के रूप में दिखाया जाता है, जो प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद ले रहा है।

- **मालाकौसा राग** — यह राग रात्रि के समय का प्रतिनिधित्व करता है और करुणा तथा आध्यात्मिकता से भरा हुआ है। इसे चित्रों में साधुओं या योगियों के साथ दर्शाया जाता है।
- **मेघ राग** — यह राग वर्षा ऋतु और उल्लास का प्रतीक है। मेघ राग के चित्रों में बादल, बारिश, और नृत्य करते हुए मोर देखे जाते हैं।
- **हिंडोला राग** — यह राग वसंत और प्रेम का प्रतीक है। इसे झूलू पर बैठी हुई महिला के रूप में चित्रित किया जाता है, जो पेड़ों और फूलों के बीच झूल रही है।

14 वीं शताब्दी के दौरान संगीत, साहित्य में ज्ञान नामक रचना में संस्कृत भाषा में छंदों के रूप में रागों का वर्णन मिलता है रागमाला चित्र शृंखला में रागों को साकार अस्तित्व मिला जिसे रागमाला के अनेक चित्र राग परिवार का मानवीय रूप का वर्णन करते हैं रागमाला के चित्रों में राग को एक मानवीय तथा दिव्या मानव के रूप में चित्रण किया गया है इन चित्रों की विषय वस्तु श्रृंगार और भक्ति के रूप में विशेष रूप से रही है रागमाला चित्रों को भारतीय बोलचाल में राग चित्र कहा जाता है मध्यकालीन लघु चित्रों में संगीत को रूप प्रदान करने के लिए लघु चित्रों का निर्माण किया गया राग माला का चित्रण कई स्थानों पर हुआ। मुगल सल्तनत, मालवा, दतिया, बूंदी, कोटा, मेवाड़, बीकानेर, कांगड़ा, बूंदी, कुल्लू, चंबा और दक्कन शैली में राग माला का चित्रण हुआ।



चित्र सं.1 श्री राग



चित्र सं.1 दीपक राग



चित्र सं.3 राग मेघ



चित्र सं.4 हिंडोला राग

इन चित्रों में भारतीय संगीत की विभिन्न विधाओं को दर्शाया गया है संगीत कला प्राचीन काल से ही भारतीय लोकचार का हिस्सा है। ढोल, झांझ, शहनाई की ध्वनि और शंख बजाना किसी समारोह का हिस्सा है रागमाला के चित्रों में शास्त्रीय संगीत का अद्भुत संगम है अहमदाबाद से प्राप्त 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रचित कल्पसूत्र की प्रति, जिसके हासियों में सुन्दर ढग से अंकित राग-रागिनियों के चित्र बड़े प्रभावशाली बने हैं। 17वीं शताब्दी एवं 18वीं शताब्दी में इन चित्रों के निर्माण का श्रेष्ठ समय रहा हैं और 19वीं शताब्दी में आते-आते कार्य में गिरावट आई तथा 20वीं शताब्दी में इस परंपरा का पूर्ण हस हो गया। इनके निर्माण का केंद्र राजस्थान, मध्य भारत और दक्षिणी प्रदेश में अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुंडा रहा है। गंगा यमुना के मैदानी क्षेत्रों तथा उत्तर में पहाड़ी क्षेत्रों में रागमाला चित्र बने बखूबी से बनाये गए हैं।

प्रमुख राग-रागनियां

भारतीय लघु चित्रकला में रागमाला का प्रमुख स्थान है 17वीं से 18वीं शती की सभी प्रचलित शैलियों में रागमाला को विशेष रूप चित्रित किया हैं राग भारतीय संगीत का प्रमुख अंग हैं। भरत मुनि द्वारा रचित दूसरी शताब्दी का नाट्य शास्त्र ललित कलाओ पर प्रारम्भिक एक ग्रन्थ हैं जिसमे भारतीय संगीत का वर्णन मिलता हैं अभिनव द्वारा 10वीं शती का अभिनव भारती में 96 रागों का वर्णन किया गया हैं। 1127 ई० के लगभग राजा सोमेश्वर ने आभिलाशितार्थ चिंतामणि में मुख्य छः राग और प्रत्येक राग की छः रागनियाँ उल्लेखित हैं। जो निम्नलिखित हैं।

- श्री राग — 1 मालवी, 2 त्रिवेणी, 3 गौरी, 4 केदार, 5 मधुमाधवी, 6 पहाडिका
- वसंत राग — 1 देशी, 2 देवगिरी, 3 वराटी, 4 तोड़ी, 5 ललिता, 6 हिन्दोली
- पंचम राग — 1 विभाषा, 2 भूपाली, 3 कर्णाटी, 4 बड़हंसिका, 5 मालवी, 6 पटमंजरी
- मेघ रागदृ 1 मल्लारी, 2 सोराठी, 3 सावेरी, 4 कौशिकी, 5 गंधारी, 6 हरश्रृंगार
- भैरव रागदृ 1 भैरवी, 2 गुर्जरी, 3 रामकिरी, 4 गुणकिरी, 5 बंगाली, 6 संधवी
- नटनाराय — 1 कोमादी, 2 आभारी, 3 नाटिका, 4 कल्याणी, 5 सारंगी, 6 नट्टहंबीरा

रागमाला का चित्रांकनदृ मुगल संतलत में अखरब के सासन काल को साहित्य कामेवाड़ शैली में रागमाला का चित्रण राजा जगत सिंह प्रथम के समय में 1628 से 1650 ई० तक चित्रकार साहबदीन द्वारा किया गया। चावंड की प्रसिद्ध रागमाला का चित्रण 1605 ई० राजा अमर सिंह के समय में प्रसिद्ध चित्रकर निसारदीन ने किया।

रागमाला चित्रों का साहित्यिक और कलात्मक महत्व

भारतीय कला और साहित्य का समृद्ध इतिहास अपने भीतर अनेक रचनात्मक परंपराओं और सांस्कृतिक धरोहरों को समेटे हुए है। रागमाला चित्रकला इस परंपरा का एक ऐसा अनूठा और रमणीय स्वरूप है, जिसमें संगीत, साहित्य और चित्रकला का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। इन चित्रों में रागों और रागिनियों को व्यक्त करने के लिए जिन रंगों, रेखाओं और भावों का उपयोग किया गया है, वे न केवल कलात्मक दृष्टि से अद्वितीय हैं, बल्कि साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

साहित्य में रागमाला चित्रकला का गहरा प्रभाव देखसकते हैं। रीतिकालीन कवियों, विशेषकर बिहारी, देव और पद्माकर ने रागमाला के सौंदर्य और भावों को अपनी कविताओं में स्थान दिया। रागमाला चित्रों के माध्यम से व्यक्त होने वाले भावों और प्रतीकों को इन कवियों ने अपने साहित्यिक कार्यों में आत्मसात किया।

सांस्कृतिक दृष्टि से, रागमाला चित्रकला भारतीय समाज की संगीत परंपरा और उसके भावनात्मक पहलुओं को संरक्षित करने का एक माध्यम रही है। इन चित्रों ने न केवल संगीत और साहित्य के बीच के गहरे संबंध को उजागर किया है, बल्कि समाज के धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन को भी अभिव्यक्ति दी है।

रागमाला चित्रों की कलात्मक विशेषताएं

रागमाला चित्रों की प्रमुख कलात्मक विशेषताएं उनके रंगों की समृद्धि, रेखाओं की कोमलता, और प्रतीकात्मकता में निहित हैं। इन चित्रों में मुख्यतः गेरुआ, पीला, हरा, और नीला रंग प्रमुखता से उपयोग किया जाता है। ये रंग न केवल प्रकृति के साथ तालमेल बिठाते हैं, बल्कि राग और रागिनियों की भावनात्मक स्थिति को भी प्रभावशाली ढंग से दर्शाते हैं।

चित्रों की रेखाएं सरल और कोमल होती हैं, जो मानव आकृतियों और प्रकृति के विवरण को जीवंत बनाती हैं। प्रतीकात्मकता इन चित्रों की एक और महत्वपूर्ण विशेषता है। उदाहरण के लिए, चंद्रमा और कमल प्रेम और सौंदर्य के प्रतीक हैं, जबकि मोर और बारिश की बूंदें उल्लास और उत्सव का प्रतिनिधित्व करती हैं।

रागमाला चित्रकला की सबसे बड़ी विशेषता है उसके माध्यम से व्यक्त किए जाने वाले भाव। हर राग या रागिनी एक विशेष भावना या 'रस' को व्यक्त करती है। शृंगार, करुण, शांत और वीर जैसे रस इन चित्रों में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, राग श्री शांत रस का प्रतीक है, जबकि रागिनी टोड़ी शृंगार रस को दर्शाती है।

इन चित्रों ने हिंदी साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डाला। कवियों ने इन भावनाओं को अपने काव्य में स्थान दिया और रागमाला के प्रतीकों का उपयोग साहित्यिक अभिव्यक्ति को गहराई देने के लिए किया गया।

निष्कर्ष

रागमाला चित्रकला भारतीय कला परंपरा की एक ऐसी अद्वितीय धरोहर है, जिसमें संगीत, साहित्य, चित्रकला और आध्यात्मिक चेतना का समन्वित रूप दिखाई देता है। यह केवल चित्रों की श्रृंखला नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना की संवेदनशील अभिव्यक्ति है। भारतीय कलाकारों ने अमूर्त संगीत को मूर्त दृश्य रूप प्रदान कर जिस प्रकार रागों और रागिनियों के भावों को रंगों, रेखाओं और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया, वह विश्व कला इतिहास में अत्यंत विशिष्ट स्थान रखता है। रागमाला चित्रों में संगीत के स्वर, साहित्य के भाव और चित्रकला की कल्पनाशीलता एक-दूसरे में इस प्रकार घुल-मिल जाते हैं कि वे दर्शक के मन में सौंदर्य, आनंद और आध्यात्मिक अनुभूति उत्पन्न करते हैं।

रागमाला चित्रकला का विकास मध्यकालीन भारतीय लघु चित्र परंपरा के अंतर्गत हुआ, परंतु इसकी जड़ें भारतीय संगीतशास्त्र, नाट्यशास्त्र और काव्य

परंपरा में निहित हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, अभिनव गुप्त की अभिनव भारती तथा विभिन्न संगीत ग्रंथों में रागों के स्वरूप, उनके समय, ऋतु और भावों का जो वर्णन मिलता है, वही आगे चलकर चित्रों के माध्यम से साकार रूप में सामने आया। कलाकारों ने प्रत्येक राग को मानव रूप देकर उसे एक जीवंत व्यक्तित्व प्रदान किया। कहीं राग राजा के रूप में दिखाई देता है, कहीं विरहिणी नायिका के रूप में, तो कहीं योगी, साधु अथवा प्रेमी के रूप में। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय कला केवल दृश्य सौंदर्य तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने भावात्मक और दार्शनिक पक्षों को भी समान महत्त्व दिया।

रागमाला चित्रों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनकी भावाभिव्यक्ति है। प्रत्येक राग किसी न किसी रस, ऋतु, समय और मनःस्थिति का प्रतिनिधित्व करता है। मेघ राग वर्षा और उल्लास का प्रतीक है, दीपक राग अग्नि और प्रकाश का, भैरव राग गंभीरता और अध्यात्म का, जबकि हिंडोला राग प्रेम और वसंत का द्योतक है। कलाकारों ने इन भावों को प्रकृति, मानव आकृतियों, पशु-पक्षियों और रंगों के माध्यम से अत्यंत सूक्ष्मता से व्यक्त किया। वर्षा के लिए घने बादल और नाचते मोर, प्रेम के लिए झूले और पुष्प-वाटिकाएँ, तथा विरह के लिए एकाकी नायिका जैसे प्रतीक इन चित्रों को अत्यंत जीवंत और प्रभावशाली बनाते हैं। इस प्रकार रागमाला चित्रकला भारतीय सौंदर्यशास्त्र और रस सिद्धांत की मूर्त अभिव्यक्ति बन जाती है।

साहित्यिक दृष्टि से भी रागमाला चित्रों का अत्यंत महत्त्व है। हिंदी साहित्य, विशेषकर रीतिकालीन काव्यधारा में रागमाला के भावों और प्रतीकों का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। बिहारी, केशवदास, देव, पद्माकर आदि कवियों ने अपने काव्य में श्रृंगार, विरह, प्रकृति और भक्ति के जिन रूपों का वर्णन किया, वे रागमाला चित्रों की भावभूमि से अत्यंत निकट संबंध रखते हैं। इन चित्रों ने साहित्य को दृश्यात्मक आधार प्रदान किया तथा साहित्य ने चित्रों को भावात्मक गहराई दी। यही कारण है कि रागमाला चित्रकला को केवल चित्रकला की शैली न मानकर एक बहुआयामी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है।

राजस्थानी, पहाड़ी, मुगल और दक्कनी शैलियों में रागमाला चित्रण की समृद्ध परंपरा यह सिद्ध करती है कि भारतीय कला विभिन्न क्षेत्रों में विकसित होते हुए भी एक साझा सांस्कृतिक आधार से जुड़ी रही। मेवाड़ के साहिबदीन, चावंड के निसारदीन तथा अन्य अनेक चित्रकारों ने इस परंपरा को उच्च शिखर तक

पहुँचाया। इन चित्रों में स्थानीय जीवन, वेशभूषा, स्थापत्य, प्रकृति और लोक-संस्कृति के तत्व भी सम्मिलित होते गए, जिससे रागमाला चित्र केवल संगीत के दृश्य रूप न रहकर तत्कालीन समाज और संस्कृति के दर्पण भी बन गए।

यद्यपि 19वीं शताब्दी के बाद इस परंपरा में धीरे-धीरे गिरावट आने लगी और आधुनिकता के प्रभाव में यह कला सीमित होती चली गई, फिर भी भारतीय कला इतिहास में इसका महत्त्व आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है। वर्तमान समय में रागमाला चित्रकला केवल संग्रहालयों या कला दीर्घाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय सांस्कृतिक पहचान, शास्त्रीय संगीत और परंपरागत सौंदर्यबोध का महत्वपूर्ण प्रतीक बन चुकी है। कला इतिहासकार, संगीतज्ञ और साहित्यकार आज भी इन चित्रों का अध्ययन भारतीय संस्कृति की बहुआयामी चेतना को समझने के लिए करते हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि रागमाला चित्रकला भारतीय कला की उस महान परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें कला केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि भावों, विचारों, आध्यात्मिक अनुभवों और सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। यह चित्रकला संगीत को दृश्य रूप प्रदान कर उसे जनसामान्य के लिए अधिक सुलभ और अनुभूतिपूर्ण बनाती है। रागमाला हमें यह सिखाती है कि भारतीय संस्कृति में कला की प्रत्येक विधा एक-दूसरे से गहराई से जुड़ी हुई है और इनका सामूहिक स्वरूप ही भारतीय सभ्यता की वास्तविक पहचान है। इस प्रकार रागमाला चित्रकला भारतीय संस्कृति, साहित्य, संगीत और ललित कला के समन्वित सौंदर्य की अनुपम अभिव्यक्ति है, जो आने वाली पीढ़ियों को हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से निरंतर परिचित कराती रहेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ब्राउन, के. (2003). द आर्ट ऑफ रागमाला पेंटिंग. नई दिल्ली, भारत: रोली बुक्स।
- कुमारस्वामी, ए. के. (1916). राजपूत पेंटिंग. लंदन, इंग्लैंड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- एबेलिंग, के. (1973). रागमाला पेंटिंग. बेसल, स्विट्जरलैंड : रवि कुमार पब्लिशर्स।
- गोस्वामी, बी. एन. (1992). एसेंस ऑफ इंडियन आर्ट. नई दिल्ली, भारत: संचार पब्लिशिंग हाउस।

- गोस्वामी, बी. एन., एवं फिशर, ई. (1987). पहाड़ी मास्टर्स : कोर्ट पेंटर्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया. ज्यूरीख, स्विट्जरलैंड: आर्टिबस एशिए पब्लिशर्स ।
- क्रामरिश, एस. (1983). द आर्ट ऑफ इंडिया: ट्रेडिशनस ऑफ इंडियन स्कल्पचर, पेंटिंग एंड आर्किटेक्चर. लंदन, इंग्लैंड: फाइडन प्रेस ।
- रंधावा, एम. एस. (1961). बसोहली पेंटिंग. नई दिल्ली, भारत: नेशनल म्यूजियम ।
- शर्मा, आर. ए. (1994). इंडियन मिनिएचर पेंटिंग्स. नई दिल्ली, भारत: अभिनव पब्लिकेशन्स ।
- सिंह, के. (1983). इंडियन पेंटिंग: द लेसर नोन ट्रेडिशनस. नई दिल्ली, भारत: लस्टर प्रेस ।
- बीच, एम. सी. (1992). मुगल एंड राजपूत पेंटिंग. कैम्ब्रिज, इंग्लैंड: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस ।
- हार्ले, जे. सी. (1994). द आर्ट एंड आर्किटेक्चर ऑफ द इंडियन सबकॉन्टिनेंट (द्वितीय संस्करण)। न्यू हेवन, अमेरिका: येल यूनिवर्सिटी प्रेस ।
- जैन, जे. (2001). इंडियन मिनिएचर पेंटिंग्स. नई दिल्ली, भारत: सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ।
- देसाई, डी. (1989). आर्ट एंड आइकन: एसेज ऑन अर्ली इंडियन आर्ट. नई दिल्ली, भारत: मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स ।
- भरतमुनि. (2005). नाट्यशास्त्र (अनूदित संस्करण)। नई दिल्ली, भारत: साहित्य अकादमी ।
- सोमेश्वर तृतीय. (2005). अभिलाषितार्थ चिंतामणि (अनूदित संस्करण)। वाराणसी, भारत: चौखम्बा संस्कृत सीरीज ।
- शर्मा, ओ. पी. (2006). राजस्थानी पेंटिंग. जयपुर, भारत: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी ।
- गुप्ता, एस. (2010). इंडियन क्लासिकल म्यूजिक एंड विजुअल आर्ट्स. नई दिल्ली, भारत: डी.के. प्रिंटवर्ल्ड ।
- मिशेल, जी. (2000). द पेंगुइन गाइड टू द मॉन्यूमेंट्स ऑफ इंडिया. लंदन, इंग्लैंड: पेंगुइन बुक्स ।
- आर्चर, डब्ल्यू. जी. (1976). इंडियन पेंटिंग्स फ्रॉम द पंजाब हिल्स. लंदन, इंग्लैंड: सोथबी पार्क बर्नेट ।
- देहेजिया, एच. (1997). द सेंसुअस एंड द सेक्रेड: चोला ब्रॉन्जेज फ्रॉम साउथ इंडिया. नई दिल्ली, भारत: मापिन पब्लिशिंग ।

Gender and Ethnic Differences in Aggression among College Students of Ranchi District

Kumari Ruby

*Research Scholar, University Department of Psychology,
Ranchi University, Ranchi, Jharkhand, India*

Ishani Sinha

*Teaching Assistant, University Department of Psychology
Ranchi University, Ranchi, Jharkhand, India*

ABSTRACT

Background: Aggression has become an increasing concern in contemporary society, particularly among young adults. Although some level of assertiveness is normal, uncontrolled aggression can lead to interpersonal conflicts, academic difficulties, and psychological distress. College students, being in a transitional stage marked by emotional changes and identity development, may be particularly vulnerable to aggressive tendencies. Gender and ethnic background are important social factors that can influence how aggression is expressed. Understanding these differences is essential for developing effective preventive and intervention strategies in educational settings.

Method: The study aimed to assess and compare the level of aggression among college students based on gender (male and female) and ethnicity (tribal and non-tribal), and to examine the effect of these variables on aggression. The sample consisted of 120 college students 60 tribal students (30 males and 30 females) and 60 non-tribal students (30 males and 30 females), aged 18–24 years from Ranchi district. A stratified random sampling technique was used to ensure equal representation of gender and ethnicity. The study adopted a comparative research design. Aggression was measured using the **Aggression Scale by Mathur and Bhatnagar**. Independent samples t-tests were applied to analyze group differences.

Results: The findings revealed that most students demonstrated average levels of aggression. A significant difference was found between male and female students, with males scoring higher on aggression. However, no significant difference was observed between tribal and non-tribal students.

Conclusion: The study concludes that gender plays a significant role in influencing aggression among college students, whereas ethnicity does not show a significant impact in the present context. The findings highlight the need for gender-sensitive interventions to promote healthy emotional regulation among young adults.

Keywords: *Aggression, Gender, Ethnicity, College Students, Young Adults*

INTRODUCTION

Aggression is a complex and multidimensional psychological construct that has received sustained attention in behavioral sciences. It is generally defined as any behavior directed toward another individual with the intention of causing harm, whether physical or psychological (Baron & Richardson, 1994). Aggression may take various forms, including physical aggression, verbal hostility, anger, relational aggression, and indirect or covert forms of harm (Buss, 1961; Crick & Grotpeter, 1995). While some degree of assertiveness is considered adaptive, persistent or uncontrolled aggression can result in serious interpersonal conflicts, academic disruption, and long-term psychosocial maladjustment.

From a theoretical perspective, aggression has been explained through multiple frameworks. The Frustration–Aggression Hypothesis proposed that aggression is often a response to blocked goals or frustration (Dollard et al., 1939). Later refinements suggested that frustration increases the likelihood of aggressive responses, though not all frustration leads directly to aggression (Berkowitz, 1993). Social Learning Theory further emphasized the role of observational learning, suggesting that individuals acquire aggressive behaviors by modeling significant others and media influences (Bandura, 1973). More recently, integrative approaches such as the General Aggression Model conceptualize aggression as the outcome of interactions among personal traits, situational inputs, cognition, affect, and arousal processes (Anderson & Bushman, 2002). Neurobiological research also highlights the role of prefrontal cortex functioning, hormonal influences, and autonomic arousal in shaping aggressive tendencies, indicating that aggression has both biological and environmental determinants (Raine, 2002; Blair, 2021).

Young adulthood, particularly the college phase, represents a transitional developmental period marked by identity exploration,

academic pressures, emotional fluctuation, and expanding social networks. These changes may increase vulnerability to emotional dysregulation and aggressive reactions. Research among college populations suggests that aggression may manifest not only in physical forms but also through relational hostility, cyber aggression, and verbal confrontations (Bailey & Ostrov, 2008). At the same time, peer dynamics, academic competition, and perceived social threats may intensify aggressive responses.

One of the most debated areas in aggression research concerns gender differences. Traditionally, males have been considered more physically aggressive than females, particularly in overt forms of violence (Eagly & Steffen, 1986). Meta-analytic findings indicate that men tend to engage more frequently in direct physical aggression, especially when unprovoked (Bettencourt & Miller, 1996). However, more recent research suggests that gender differences are smaller than previously assumed and often depend on the type of aggression being measured. Females may display higher levels of relational or indirect aggression, such as social exclusion and reputational harm (Crick & Grotpeter, 1995; Björkqvist et al., 1994). Some contemporary studies among young adults even report minimal or non-significant gender differences in overall aggression levels, indicating a changing pattern in gender expression of aggressive behavior (Shaban & Kumar, 2016).

In addition to gender, ethnicity and cultural background play an important role in shaping emotional expression and behavioral norms. Ethnicity refers to shared cultural identity, traditions, and social experiences that influence values and behavioral expectations (Cohen, 1978). Cultural contexts may determine how anger is expressed, suppressed, or socially regulated. Environmental stressors, socioeconomic conditions, exposure to violence, and community norms may also influence aggressive behavior patterns. However, empirical findings on ethnic differences in aggression are mixed. Some studies report minimal differences when groups share similar educational and environmental settings, suggesting that contextual factors may be more influential than ethnic identity itself (Kumari & Malhotra, 2023). This indicates the need for context-specific research rather than broad generalizations.

Despite the extensive global literature on aggression, limited

research has focused specifically on tribal and non-tribal college populations in the Indian context, particularly within Jharkhand. Ranchi district presents a unique sociocultural setting where students from diverse ethnic backgrounds interact within shared academic institutions. Understanding whether aggression levels vary across gender and ethnic lines within this environment can provide valuable insight into behavioral dynamics in higher education settings. Such findings may contribute to the development of preventive strategies, counseling interventions, and campus-based mental health programs.

In view of these considerations, the present study aims to examine gender and ethnic differences in aggression among college students of Ranchi district using a standardized measure of aggression.

Objectives

- To assess and compare the levels of aggression among college students based on gender (male and female) and ethnicity (tribal and non-tribal).
- To examine the effect of gender (male and female) on aggression among college students of Ranchi district.
- To examine the effect of ethnicity (tribal and non-tribal) on aggression among college students of Ranchi district.

Hypotheses

- There will be significant effect of gender (male and female) on aggression among college students of Ranchi district.
- There will be significant effect of ethnicity (tribal and non-tribal) on aggression among college students of Ranchi district.

METHOD

Sample

The present study was conducted among college students of Ranchi district within the age range of 18–24 years. A total of 120 students participated in the study. The sample comprised 60 tribal students (30 males and 30 females) and 60 non-tribal students (30 males and 30 females).

A stratified random sampling technique was employed to ensure adequate representation of both ethnicity (tribal and non-tribal) and gender (male and female). The population was initially divided into strata based on these two variables, and participants were randomly selected from each

stratum to maintain equal group sizes across categories.

The study adopted a comparative research design to examine differences in aggression levels based on gender and ethnicity. Independent samples t-tests were applied to compare the mean aggression scores between the respective groups.

Table 1 : Sample Design

Ethnicity	Tribal		Non-Tribal	
Gender	Male	Female	Male	Female
No of Cases	30	30	30	30
Sub-total	60		60	
Grand Total	120			

Variables of the Study

a) Independent Variables (IVs)

The present study included the following independent variables:

- **Gender** (male and female)
- **Ethnicity** (tribal and non-tribal)

Both variables were categorical in nature and were used to examine differences in aggression among college students.

b) Dependent Variable (DV)

The dependent variable of the study was:

- **Aggression**

Aggression refers to the tendency to exhibit behaviors intended to cause physical or psychological harm to others. In the present study, aggression was assessed using a standardized aggression scale administered to the participants.

c) Control Variables

In order to minimize the impact of extraneous influences and maintain uniformity in the sample, certain variables were controlled:

Age: Only students within the age range of 18–24 years were included in the study.

Educational Status: Participants were regular college students.

Geographical Location: All participants were selected from colleges located in Ranchi district.

These controls were maintained to ensure homogeneity of the sample and to strengthen the internal validity of the study.

Selection Criteria

a) Inclusion Criteria

Participants were included in the study if they:

- Were aged between 18 to 24 years.
- Were currently enrolled as undergraduate college students in Ranchi district.
- Identified as either Tribal or Non-Tribal.
- Gave informed consent to participate voluntarily in the study.

b) Exclusion Criteria

Participants were excluded from the study if they:

- Were below 18 years or above 24 years of age.
- We're not regular college students.
- Submitted incomplete or inconsistent responses on the questionnaire.

Tools of the Study

The following tools were used for data collection:

1. **Personal Data Questionnaire (PDQ)**
2. **Aggression Scale developed by G.P. Mathur and Raj Kumari Bhatnagar (1985)**

- 1) **Personal Data Questionnaire (PDQ):** Personal Data Questionnaire (PDQ) was prepared by the researcher to obtain the socio-demographic details like name, age, sex, ethnicity, college etc. from the respondents.
- 2) **Aggression Scale:** Aggression scale was developed by **Mathur and Bhatnagar (1985)** to measure the level of aggression among the participants. The scale was designed for individuals aged 14 years and above and consisted of 55 statements describing different forms of aggressive behavior across various situations. It followed a five-point Likert format with response options ranging from Strongly Agree, Agree, Undecided, Disagree, to Strongly Disagree. Out of the total items, 30 were positively worded and 25 were negatively worded. For positive items, scoring was done in the order of 5, 4, 3, 2, and 1, whereas for negative items the scoring pattern was reversed (1, 2, 3, 4, and 5). The total aggression score was obtained by summing the responses to all 55 items, with possible scores ranging from 55 to 275. Higher scores indicated

higher levels of aggression, while lower scores reflected lower aggressive tendencies. The reliability of the scale was established through the test–retest method on 300 males and 300 females from urban areas, yielding reliability coefficients of 0.88 for males and 0.81 for females. Concurrent validity was determined by correlating the scale with Murray's Questionnaire of Aggression, resulting in validity coefficients of 0.80 for males and 0.78 for females, indicating satisfactory psychometric properties of the tool.

Procedure

Before initiating the data collection process, formal permission was taken from the respective college authorities. After receiving approval, the students were approached during college hours and were briefly informed about the purpose and nature of the study. They were assured that their participation was voluntary and that the information provided by them would remain confidential and be used strictly for academic purposes. After obtaining informed consent, the participants were first given the Personal Data Sheet to collect relevant background information, followed by the Aggression Scale developed by **Mathur and Bhatnagar**. Clear instructions regarding how to respond to the items were explained to them. The participants completed the questionnaires individually in a classroom setting, and no strict time limit was imposed, allowing them to respond comfortably and honestly. Once the data were collected, the responses were carefully examined. Incomplete or inconsistent questionnaires were excluded from the final dataset. The valid responses were then coded systematically and prepared for statistical analysis.

Statistical Analysis

In line with the objectives and hypotheses of the study, appropriate statistical techniques were employed to analyze the data.

Descriptive statistics, including percentage, mean and standard deviation, were computed to understand the overall level of aggression among the participants. To examine group differences, independent samples t-tests were conducted to compare the mean aggression scores between male and female students, as well as between tribal and non-tribal students. In addition, graphical representations such as bar diagrams were used to visually present the differences in aggression levels across groups, thereby facilitating clearer interpretation of the findings.

RESULTS

The results of the study are presented in the following tables, highlighting the levels of aggression and the mean differences across gender and ethnicity.

Table 2: Frequency and Percentage Distribution of Aggression Levels across Gender and Ethnicity (N = 120)

Variable	Sub-groups	N	Levels of Aggression					
			Low (55 to 154)		Average (155 to 204)		High (205 to 275)	
			N	%	N	%	N	%
Gender	Male	60	7	11.67%	43	71.67%	10	16.67%
	Female	60	14	23.33%	38	63.33%	8	13.33%
Ethnicity	Tribal	60	8	13.33%	40	66.67%	12	20%
	Non-tribal	60	13	21.67%	41	68.33%	6	10%
Total		120	21	17.5%	81	67.5%	18	15%

Note: Gender and ethnicity categories represent overlapping classifications within the same sample (N = 120)

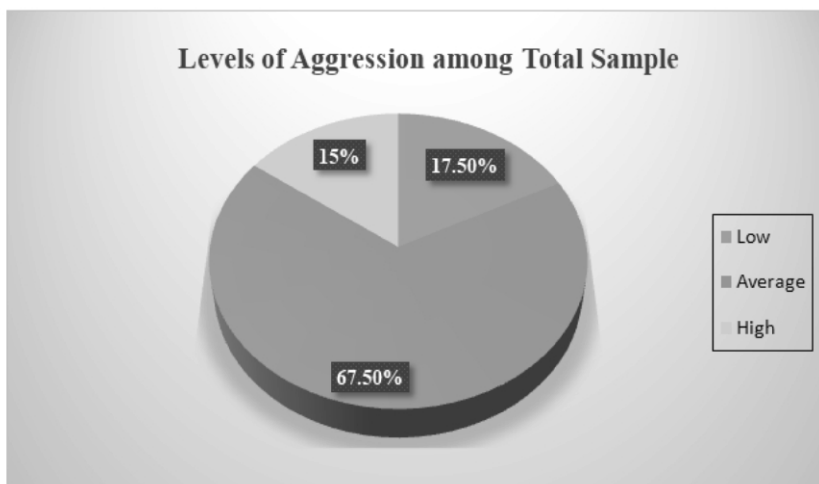


Figure 1. Shows Graphical Representation of Levels of Aggression among the Total Sample.

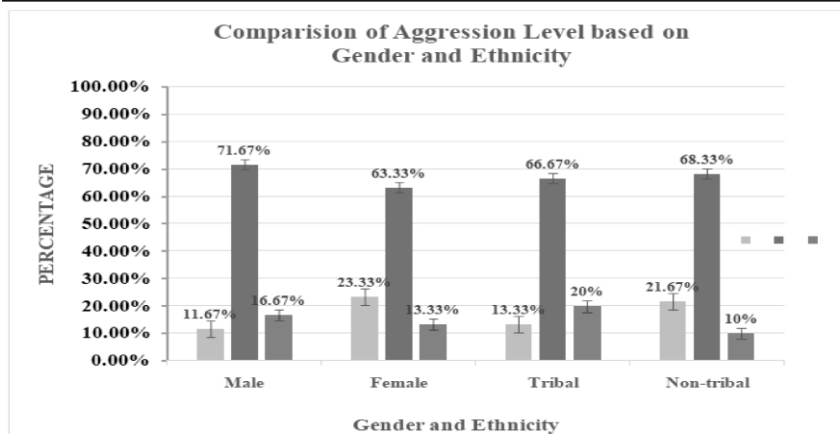


Figure 2. Shows Graphical Representation of Levels of Aggression among the Sample Sub-groups

Table 2 and the accompanying graphs indicate that the majority of students in the total sample fell under the average level of aggression (67.5%), while 17.5% showed low aggression and 15% exhibited high aggression. When gender was considered, males showed slightly higher percentages in the high aggression category (16.67%) compared to females (13.33%), whereas females had a somewhat higher proportion in the low aggression category (23.33%) than males (11.67%).

In terms of ethnicity, tribal students reported a higher percentage of high aggression (20%) compared to non-tribal students (10%), while non-tribal students showed a relatively greater proportion in the low aggression category (21.67%). However, across all groups- male, female, tribal, and non-tribal the dominant pattern remained average levels of aggression. The graphs visually reinforce these findings, clearly showing that most participants, irrespective of gender and ethnicity, clustered within the average aggression range, with comparatively smaller proportions at the low and high extremes.

Mean differences on the basis of Gender

Table 3: Mean Difference in Aggression between Male and Female Students.

Group	N	Mean	SD	t-ratio	df	Significance (p-value)
Male	60	201.80	8.33	3.74	118	$P < 0.01$
Female	60	195.64	9.68			

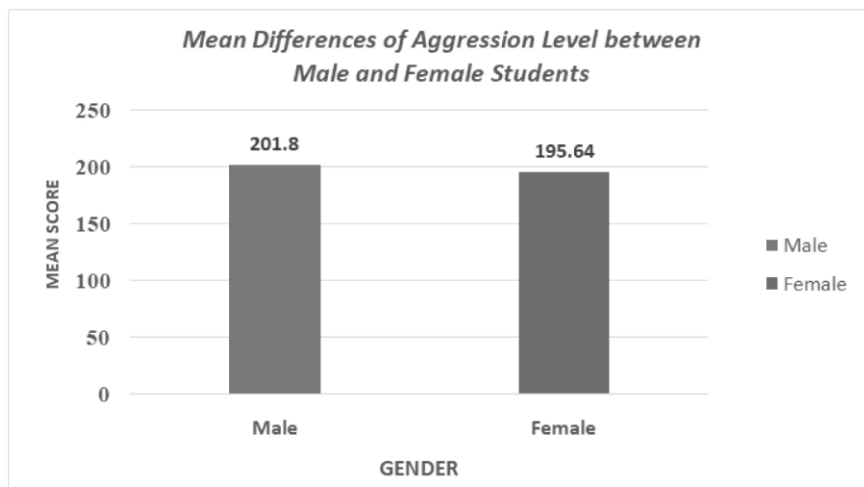


Figure 3. Shows Graphical Representation of Mean Differences of Aggression Level between Male and Female Students.

Table 3 and Figure 3 show the mean difference in aggression between male and female students. The mean aggression score of males ($M = 201.80$) was higher than that of females ($M = 195.64$). The obtained t -value ($t = 3.74$) with 118 degrees of freedom was found to be significant at the 0.01 level ($p < 0.01$). This indicates that the difference in aggression between male and female students was statistically significant. The bar graph also clearly shows that males scored higher on aggression compared to females.

Therefore, the hypothesis stating that there will be a significant effect of gender (male and female) on aggression among college students of Ranchi district was **accepted**, as a significant gender difference in aggression was found.

Mean differences on the basis of Ethnicity

Table 4: Mean Difference in Aggression between Tribal and Non-tribal Students.

Group	N	Mean	SD	t-ratio	df	Significance (p-value)
Tribal	60	203.90	11.67	1.10	118	$p > 0.05$
Non-tribal	60	201.64	10.88			

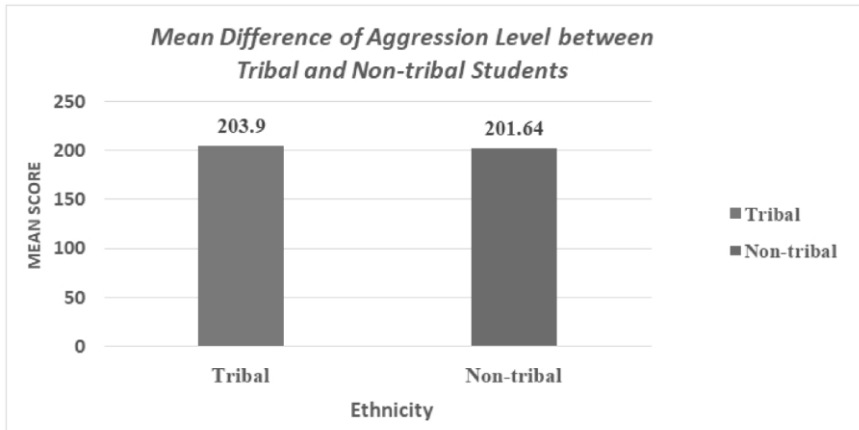


Figure 4. Shows Graphical Representation of Mean Difference of Aggression Level between Tribal and Non-tribal Students.

Table 4 and Figure 4 present the mean difference in aggression between tribal and non-tribal students. The mean aggression score of tribal students ($M = 203.90$) was slightly higher than that of non-tribal students ($M = 201.64$). However, the obtained t -value ($t = 1.10$) with 118 degrees of freedom was not statistically significant ($p > 0.05$). This indicates that although there was a small difference in mean scores, the difference was not strong enough to be considered statistically significant. The bar graph also shows that the mean scores of both groups are very close to each other.

Therefore, the hypothesis stating that there will be a significant effect of ethnicity (tribal and non-tribal) on aggression among college students of Ranchi district was **rejected**, as no significant difference was found between the two groups.

DISCUSSION

The present study examined gender and ethnic differences in aggression among college students of Ranchi district. The findings revealed that most students demonstrated average levels of aggression, with a smaller proportion falling in the high and low categories. This suggests that aggression among the majority of students exists within a moderate and socially manageable range. During late adolescence and early adulthood, emotional fluctuations, academic pressure, peer comparison, and identity formation can naturally give rise to moderate aggressive tendencies. However, the absence of extreme levels in most participants reflects relative psychological adjustment within the college environment.

Gender Differences in Aggression

A significant difference was observed between male and female students, with males scoring higher on aggression. This finding is strongly supported by earlier empirical research.

One of the most comprehensive reviews by **Hyde (1984)** examined gender differences in aggression and found that males consistently showed higher levels of physical aggression compared to females. Similarly, **Archer (2004)** conducted a meta-analytic review and concluded that males display higher direct and physical aggression across cultures, although differences may vary in magnitude depending on context.

Further support comes from **Bettencourt and Miller (1996)**, who found that gender differences in aggression are especially pronounced in situations involving provocation. Their meta-analysis suggested that males are generally more likely to respond with overt aggression, particularly when social norms permit such responses.

Biological perspectives also help explain these findings. Research by **Book, Starzyk, and Quinsey (2001)** reported a positive association between testosterone levels and aggression, particularly among males. From a social learning perspective, **Bandura (1973)** proposed that aggression is learned through observation, modeling and reinforcement. In many societies, boys are more often reinforced for assertive and dominant behavior than girls, which may later manifest as higher aggression levels.

The present findings align with these theoretical and empirical perspectives. The higher aggression among males in this study may reflect both socialization patterns and biological influences that encourage overt expression of aggressive tendencies.

Ethnic Differences in Aggression

In contrast to gender, no significant difference was found between tribal and non-tribal students. Although tribal students showed a slightly higher mean score, the difference was statistically non-significant. This suggests that ethnicity, in the present context, did not meaningfully influence aggression levels.

This finding can be understood in light of research suggesting that environmental and situational factors often outweigh cultural background when individuals share similar institutional settings. **Bronfenbrenner's Ecological Systems Theory (1979)** emphasizes that behavior is shaped by

immediate environments such as schools and peer groups. Since both tribal and non-tribal students were studying in the same colleges and exposed to similar academic and social conditions, their behavioral patterns may have become more homogeneous.

Similarly, **Anderson and Bushman (2002)**, through the **General Aggression Model (GAM)**, explained that aggression is influenced by a combination of personal and situational inputs. When situational variables (such as shared educational context, peer culture, and institutional norms) are similar, differences based solely on demographic background may reduce.

Research by **Verma and Saraswathi (2002)** on Indian adolescents also supports that rapid social change and shared educational environments contribute to convergence in behavioral patterns across socio-cultural groups. Thus, the absence of significant ethnic differences in the present study may reflect the integrative nature of modern college settings.

Overall Interpretation

Taken together, the findings suggest that gender is a more influential factor in determining aggression among college students than ethnicity in this sample. While male students demonstrated significantly higher aggression, ethnic background did not produce meaningful variation. The dominance of average aggression levels across all groups indicates that most students are functioning within normative behavioral limits.

Implications of the Study

The findings of the study have several practical implications. Since male students showed significantly higher aggression levels, colleges may consider organizing gender-sensitive intervention programs focusing on anger management, emotional regulation, and healthy expression of emotions. Workshops, counseling services, and peer support systems can help students manage aggressive tendencies constructively.

The absence of significant ethnic differences indicates that aggression management strategies can be implemented at an institutional level without requiring separate approaches for tribal and non-tribal students. Educational institutions can focus on promoting inclusive environments, conflict resolution skills, and positive peer interactions.

Limitations and Future Directions

Despite its contributions, the study has certain limitations. The

sample was limited to 120 college students from Ranchi district, which restricts the generalizability of the findings. The use of self-report measures may also introduce response bias, as participants might have responded in socially desirable ways. Additionally, only gender and ethnicity were examined, whereas other important variables such as family environment, socio-economic status, personality traits, and academic stress were not included.

Future research may consider larger and more diverse samples and incorporate additional psychological and environmental factors to gain a more comprehensive understanding of aggression among young adults.

CONCLUSION

The present study aimed to examine gender and ethnic differences in aggression among college students of Ranchi district. The findings revealed that most students demonstrated average levels of aggression, indicating generally moderate aggressive tendencies within the sample. A significant difference was observed between male and female students, with males reporting higher aggression levels. However, no significant difference was found between tribal and non-tribal students. These results suggest that gender plays a more prominent role than ethnicity in influencing aggression among college students in the present context. Overall, the study contributes to a better understanding of aggression patterns among young adults in an educational setting.

REFERENCES

- Anderson, C. A., & Bushman, B. J. (2002). Human aggression. *Annual Review of Psychology*, 53(1), 27–51.
<https://doi.org/10.1146/annurev.psych.53.100901.135231>
- Archer, J. (2004). Sex Differences in Aggression in Real-World Settings: A Meta-Analytic Review. *Review of General Psychology*, 8(4), 291-322. <https://doi.org/10.1037/1089-2680.8.4.291>
- Bailey, C. A., & Ostrov, J. M. (2008). Differentiating forms and functions of aggression in emerging adults: Associations with hostile

- attribution biases and normative beliefs. *Journal of Youth and Adolescence*, 37, 713–722. <https://doi.org/10.1007/s10964-007-9211-5>
- Bandura, A. (1973). *Aggression: A social learning analysis*. Prentice-Hall.
- Baron, R. A., & Richardson, D. R. (1994). *Human aggression* (2nd ed.). Plenum Press.
- Berkowitz, L. (1993). *Aggression: Its causes, consequences, and control*. McGraw-Hill.
- Bettencourt, B. A., & Miller, N. (1996). Gender differences in aggression as a function of provocation: A meta-analysis. *Psychological Bulletin*, 119(3), 422–447. <https://doi.org/10.1037/0033-2909.119.3.422>
- Björkqvist, K., Österman, K., & Lagerspetz, K. M. J. (1994). Sex differences in covert aggression among adults. *Aggressive Behavior*, 20(1), 27–33. [https://doi.org/10.1002/1098-2337\(1994\)20:1](https://doi.org/10.1002/1098-2337(1994)20:1)
- Blair, R. J. R. (2021). The neurobiology of impulsive aggression. *Harvard Review of Psychiatry*, 29(1), 35–80. <https://doi.org/10.1097/HRP.0000000000000282>
- Book, A. S., Starzyk, K. B., & Quinsey, V. L. (2001). The relationship between testosterone and aggression: A meta-analysis. *Aggression and Violent Behavior*, 6(6), 579–599. [https://doi.org/10.1016/S1359-1789\(00\)00032-X](https://doi.org/10.1016/S1359-1789(00)00032-X)
- Bronfenbrenner, U. (1979). *The ecology of human development: Experiments by nature and design*. Harvard University Press.
- Buss, A. H. (1961). *The psychology of aggression*. Wiley.
- Cohen, R. (1978). Ethnicity: Problem and focus in anthropology. *Annual Review of Anthropology*, 7, 379–403. <https://doi.org/10.1146/annurev.an.07.100178.002115>

- Crick, N. R., & Grotpeter, J. K. (1995). Relational aggression, gender, and social-psychological adjustment. *Child Development*, 66(3), 710–722. <https://doi.org/10.2307/1131945>
- Dollard, J., Doob, L. W., Miller, N. E., Mowrer, O. H., & Sears, R. R. (1939). *Frustration and aggression*. Yale University Press.
- Eagly, A. H., & Steffen, V. J. (1986). Gender and aggressive behavior: A meta-analytic review of the social psychological literature. *Psychological Bulletin*, 100(3), 309–330. <https://doi.org/10.1037/0033-2909.100.3.309>
- Hyde, J. S. (1984). How large are gender differences in aggression? A developmental meta-analysis. *Developmental Psychology*, 20(4), 722–736. <https://doi.org/10.1037/0012-1649.20.4.722>
- Kumari, S., & Malhotra, A. (2023). A comparative study of aggression between tribal and non-tribal school students. *International Journal of Novel Research and Development*, 8(2), 767–772.
- Raine, A. (2002). Annotation: The role of prefrontal deficits, low autonomic arousal, and early health factors in the development of antisocial and aggressive behavior in children. *Journal of Child Psychology and Psychiatry*, 43(4), 417–434. <https://doi.org/10.1111/1469-7610.00034>
- Shaban, N., & Kumar, P. (2016). Young adults and aggression: A comparative study of gender differences. *International Journal of Indian Psychology*, 3(4), 107–114.
- Verma, S., & Saraswathi, T. S. (2002). Adolescence in India: Street urchins or Silicon Valley millionaires? In B. B. Brown, R. W. Larson, & T. S. Saraswathi (Eds.), *The world's youth: Adolescence in eight regions of the globe* (pp. 105–140). Cambridge University Press.

Beyond the Canvas: Representation of Art Therapy in Contemporary Media and Its Psychological Implications

Gauri Pandey

Bachelors in Psychology Honors, Banaras Hindu University

Dr. Shweta Pandey

Assistant Professor, Institute of Fine Arts, Bundelkhand University, Jhansi

Abstract

Art therapy has become an important method in psychotherapy, combining creative expression with psychological healing. Over the past few decades, its use in clinical and educational settings has grown significantly. It addresses a wide range of psychological issues, including trauma, anxiety, development, and emotional disorders. At the same time, contemporary media has increasingly included therapeutic language and artistic healing practices in films, TV shows, and online discussions about wellness.

While these portrayals help raise public awareness of psychological treatment, they often offer simplified or inaccurate views of professional art therapy. This paper looks critically at how art therapy is represented in contemporary media and explores the psychological effects of these depictions. By analysing selected media works, including Bong Joon-ho's *Parasite* (2019), as well as broader representations of therapeutic aesthetics in television and digital culture, this paper examines how art therapy is often commercialized, dramatized, or misunderstood in popular discussions. The study also assesses how these portrayals affect public perceptions of mental health treatment, professional credibility, and expectations for therapeutic results.

Using foundational theories of art therapy and current psychological literature, the paper argues that while media representations have increased the visibility of therapeutic practices, they may also distort the realities of art-based interventions. The discussion emphasizes the importance of accurate representation in shaping informed public understanding and the need for critical media literacy in psychological education. Overall, this study contributes to ongoing discussions about the connection between psychology, artistic expression, and cultural representation in today's society.

Keywords: *art therapy, media representation, psychological intervention, popular culture, therapeutic discourse, mental health*

1. Introduction

Art has long been a way for people to express emotions, reflect on themselves, and communicate with others. Across different cultures and historical periods, creating art has been seen not just as an aesthetic activity but also as a tool for psychological processing and healing.

In modern psychology, this has developed into the formal field of art therapy, a specific psychotherapy approach that uses creative processes to help people explore emotions, communicate, and improve psychological well-being. Art therapy stands out because it blends psychology with creative practice. Unlike traditional verbal psychotherapy, it allows people to express their inner experiences through visual art. This approach can help them access emotions and conflicts that may be hard to put into words. It has proven effective for diverse groups, including children with developmental disorders, trauma survivors, individuals with anxiety and depression, and patients in recovery from neurological or physical conditions (Malchiodi, 2012).

Recently, however, public understanding of therapy practices has increasingly been influenced not just by clinical literature or professional institutions, but also by popular media. Films, TV shows, and online platforms often portray therapy as a dramatic story element, focusing on emotional breakthroughs, symbolic expression, or stylized healing processes. In these portrayals, art therapy is frequently shown in ways that prioritize narrative symbolism over professional accuracy.

One clear example is Bong Joon-ho's *Parasite* (2019), where the character Kim Ki-jung pretends to be an art therapist for a wealthy family with a young child. She relies on using psychological jargon superficially and exploiting the parents' fears, showing how therapeutic language can serve as cultural capital rather than being based on solid practice. This depiction provides an interesting way to look at broader misconceptions about art therapy in public awareness. Such portrayals raise important psychological and sociocultural questions.

How do media representations influence how the public understands therapeutic interventions? To what degree do dramatized portrayals shape expectations of treatment? Can increased visibility make up for inaccuracies, or do these misrepresentations weaken professional

legitimacy? This paper aims to address these questions through a critical examination of how art therapy is portrayed in contemporary media. It will first outline the historical and theoretical foundations of art therapy as a clinical practice, then contrast those realities with selected media portrayals.

The analysis will pay close attention to the psychological implications of these representations, including their potential effects on public attitudes toward mental health treatment and the credibility of therapy.

The main argument is that today's media representations of art therapy both increase visibility and promote misunderstanding. While they help normalize discussions about therapy in mainstream culture, they often simplify complex clinical processes into aesthetic performances. Understanding this tension is vital for both psychological research and improving public mental health literacy.

2. Historical and Theoretical Foundations of Art Therapy

2.1 Origins of Art Therapy

Art therapy as a psychological discipline began to develop in the mid-twentieth century, though its roots can be traced back to earlier philosophical and psychoanalytic ideas. People recognized the link between artistic expression and emotional healing long before the term “art therapy” became common.

Ancient cultures often included visual symbols, ritualistic drawing, and creative activities in healing ceremonies, showing an intuitive grasp of art's psychological importance. The modern establishment of art therapy is largely credited to Margaret Naumburg, known as the “mother of art therapy.” Influenced by psychoanalytic theory, Naumburg suggested that spontaneous artistic expression could uncover unconscious thoughts and conflicts that regular conversation could not access (Naumburg, 1966). Her approach emphasized free artistic creation as a form of symbolic communication between the patient and therapist.

On the other hand, Edith Kramer viewed art therapy as focusing on the healing power of the creative process itself. She argued that the act of creating art has inherent therapeutic value by promoting ego integration, emotional regulation, and adaptive functioning (Kramer, 1971). These foundational ideas established two key orientations in art therapy: art as symbolic communication and art as a therapeutic process.

2.2 Theoretical Frameworks

Art therapy draws from various psychological traditions, reflecting its interdisciplinary nature.

Psychoanalytic Perspective: From the psychoanalytic view, creating art is seen as a symbolic expression of unconscious material. Visual images can reveal repressed memories, unresolved conflicts, or emotional states that cannot be easily expressed verbally. Therapists interpret the symbolic elements in artwork to help clients gain insights and process emotions.

Humanistic Perspective: Humanistic psychology focuses on self-expression, authenticity, and personal growth. In this framework, art therapy is seen as a nonjudgmental process that allows individuals to explore their identities and reach self-actualization. The therapeutic relationship emphasizes empathy, acceptance, and creative freedom.

Cognitive-Behavioural Perspective: Modern practice increasingly includes cognitive-behavioural ideas. Structured artistic tasks can help clients recognize unhealthy thought patterns, manage emotional responses, and develop better coping strategies.

Expressive Therapies Continuum: The Expressive Therapies Continuum (ETC), created by Kagin and Lusebrink, provides a well-accepted framework for understanding how different artistic processes engage cognitive, emotional, and sensory systems. It guides therapeutic interventions based on clients' psychological needs and developmental stages.

3. Art Therapy in Clinical Practice

3.1 Definition and Professional Scope

Art therapy is a mental health field that combines therapeutic principles with creative activities to improve emotional, cognitive, and psychological well-being. It is conducted by trained professionals who have knowledge in both psychology and art techniques. Unlike general art activities or casual creative expression, clinical art therapy is a structured approach that follows therapeutic goals, ethical guidelines, and evidence-based methods.

The main aim of art therapy is not to create beautiful art but to help clients explore their thoughts and feelings. The artwork often acts as a physical representation of internal experiences, enabling clients to express thoughts, memories, and emotions that they might find hard to discuss verbally. Art therapy is quite different from common misunderstandings that link it only to relaxation or simple creative pastimes.

While artistic activities can be calming, clinical practice includes careful assessment, interpretation, relational processing, and tailored intervention planning.

The therapist's role goes beyond just observing the art; they help clients make sense of their feelings, watch emotional reactions, and support psychological integration. This difference is crucial, especially in today's media portrayals, which often simplify art therapy as just fun activities or intense emotional releases. These representations tend to overlook the careful methods and professional training that define real practice.

3.2 Clinical Applications Across Populations

Art therapy has proven effective across various clinical populations and psychological situations. Its adaptability allows it to meet different developmental, cultural, and diagnostic needs, making it a useful tool in many therapeutic environments.

Children and Adolescents: Art therapy is frequently used with children and teens, as younger people may not have the verbal skills to fully express their feelings. By drawing, painting, sculpting, and using symbolic images, kids can share fears, conflicts, and concerns in a more indirect way. For those dealing with trauma, abuse, or attachment issues, art therapy offers a safe space for expression.

Children who resist talking openly often feel more at ease with visual storytelling and symbolic imagery. Art therapy has also been beneficial for kids with autism spectrum disorder, attention-deficit/hyperactivity disorder, and behaviour issues. Structured creative activities can help improve emotional control, social skills, and sensory processing.

Trauma Survivors: Talking about traumatic experiences can be challenging due to fragmented memories and overwhelming emotions. Visual expression provides a different way to access and work through these traumatic events.

Research shows that trauma-informed art therapy can help with emotional containment, rebuilding narratives, and gradually approaching painful memories in a safe therapeutic setting (Malchiodi, 2020). Through symbolic imagery, survivors can express inner chaos and make sense of fragmented experiences. The nonverbal aspect of art therapy is especially important for those dealing with post-traumatic stress disorder (PTSD), where traditional talking may lead to re-traumatization.

Individuals with Anxiety and Depression: For clients facing anxiety and depression, art therapy aids emotional regulation, self-awareness, and

cognitive change. Creative expression helps clients visually identify their feelings, recognize recurring psychological patterns, and confront unhealthy beliefs through symbols.

This process often encourages mindfulness, focusing on the present moment, which can help reduce overthinking and physical tension. Studies show that even short art-making sessions can significantly lower cortisol levels and enhance emotional well-being (Kaimal et al., 2016).

Medical and Rehabilitation Settings: Art therapy is increasingly used in hospitals, rehabilitation centres, and palliative care environments. Patients dealing with chronic illness, cancer treatments, neurological injuries, or physical disabilities often face psychological distress from losing autonomy and dealing with uncertainty.

Art therapy offers a way to process these experiences and regain some sense of control through creative activities. In neurorehabilitation settings, creating art can assist with cognitive recovery, fine motor skills, and coping strategies following brain injuries or strokes.

3.3 Psychological Mechanisms Underlying Art Therapy

The effectiveness of art therapy is supported by several psychological and cognitive processes.

Externalization of Internal Experience

Creating art turns abstract feelings into concrete visuals. This process creates distance, allowing clients to look at and reflect on difficult emotions more objectively. By seeing their feelings represented visually, clients may understand patterns, conflicts, or relationship dynamics that they didn't fully grasp before.

Symbolic Communication

Art often communicates through symbols and metaphors. Clients can express complex emotions through images that bypass defensive verbal barriers. For instance, fragmented shapes might indicate psychological disarray, while consistent colors or layouts could reflect emotional themes.

Symbolic communication is particularly useful when verbal expression is limited due to development, trauma, or cultural factors.

Emotional Regulation

The sensory and repetitive aspects of making art can help clients soothe themselves. Activities such as painting, shading, or working with clay can engage brain systems related to sensory processing and attention. This contributes to decreased physical arousal and better emotional stability.

Narrative Reconstruction

Art therapy allows clients to reframe their personal stories visually. This is particularly important for trauma survivors and those facing identity shifts. By arranging images or revisiting symbols, clients can build clearer and more integrated understandings of their experiences.

3.4 Ethical Standards and Professional Competence

Professional art therapy practice follows ethical principles like confidentiality, informed consent, cultural sensitivity, and clinical competence. Therapists must have formal training in psychological assessment, developmental psychology, mental health issues, and therapeutic techniques, along with specialized training in art-based methods. Ethical practice demands awareness of the emotional vulnerabilities that artistic expression may uncover. Misinterpreting client artwork poses a significant ethical risk. Therapists learn to avoid imposing fixed meanings and instead encourage collaborative exploration of personal significance.

This complexity stands in contrast to popular portrayals that simplify art therapy as intuitive interpretation or surface-level observation. For example, in *Parasite*, Kim Ki-jung convincingly takes on a therapeutic role by using psychological lingo and speculating on the meaning of a child's drawing. The tension and humor in this scene arise from the audience's recognition that therapeutic expertise can be superficially mimicked through confident language and overanalyzing symbols.

While this portrayal is dramatically effective, it highlights a broader cultural misunderstanding: that art therapy is merely about assigning meanings to drawings. In real clinical practice, such simplistic interpretation would breach professional standards and overlook the essential relational, developmental, and contextual factors needed for ethical service.

4. Media Representation of Therapeutic Practice

4.1 The Rise of Therapeutic Culture in Popular Media

In recent decades, psychological ideas have become a larger part of mainstream culture. Concepts once limited to therapy—trauma, boundaries, emotional processing, self-care, and healing—now appear in films, television, social media, and everyday discussions. This trend reflects what scholars call the “therapeutic turn” in modern culture: a growing tendency to understand personal and social experiences through

psychological lenses.

In this context, therapy has shifted from being a specialized clinical service to a recognizable cultural symbol. Media often uses therapeutic settings and language to convey emotional depth, sophistication, or personal transformation. Art therapy holds a unique place in these representations due to its strong visual and symbolic elements.

Unlike typical talk therapy, which can be hard to portray on screen, art therapy provides compelling visual content that fits well into storytelling. However, this cinematic allure often leads to oversimplification. Media stories often show artistic expression as leading to immediate insights or sudden psychological breakthroughs. These portrayals favor quick storytelling over realistic clinical practice, reinforcing false beliefs about therapy's timelines and results. The conflict between dramatic representation and professional accuracy stands out in select contemporary media, starting with a prominent example in recent cinema: Bong Joon-ho's *Parasite*.

4.2 Case Study: Art Therapy and Performative Expertise in *Parasite*

Bong Joon-ho's *Parasite* (2019) offers a strong indirect look at art therapy in modern cinema. While the film does not focus directly on psychological treatment, it provides important cultural insights through the character Kim Ki-jung. She pretends to be an art therapist to secure a job with the wealthy Park family.

This plot device is more than just a comedic trick. It sharply critiques class performance, institutional authority, and the social value attached to psychological expertise in today's society.

Ki-jung succeeds in convincing the Park family of her therapeutic qualifications based on several interconnected cultural beliefs. First, she uses specialized psychological language and refers to developmental interpretations of their child's drawings. Second, she presents herself with professional confidence and technical skill. Third, she takes advantage of the family's existing worries about their son's behavior.

The Park family trusts her authority not due to verified therapeutic skills but because her performance meets their expectations of professionalism. Her use of diagnostic language and symbolic interpretation is enough to create credibility.

This section highlights an important social truth: public views on

therapeutic legitimacy often rest on performative indicators-such as language, confidence, institutional connections, and visual presentation-rather than real understanding of professional practice.

From a psychological point of view, this portrayal reflects common misconceptions about art therapy.

Reduction of Art Therapy to Symbol Interpretation

In *Parasite*, Ki-jung's fake analysis focuses on assigning made-up meanings to the child's artwork. She interprets visual details as signs of psychological issues and developmental importance.

This portrayal shows a common misunderstanding: that art therapy mainly involves uncovering hidden meanings in drawings.

In reality, ethical art therapy does not depend on strict symbolic interpretation. Professional practice stresses teamwork, understanding context, sensitivity to development, and the therapeutic process.

The meaning of artistic expression cannot be universally decided through fixed symbolism. An image can have different meanings based on personal experience, cultural background, emotional condition, and relationship dynamics.

By presenting interpretation as quick and certain, *Parasite* dramatizes a simplified version of therapeutic assessment that risks reinforcing false public beliefs.

Therapeutic Language as Cultural Capital

The film also shows how psychological language acts as a form of social power.

In wealthy circles, therapeutic expertise often connects with sophistication, modernity, and responsible parenting. The Park family's choice to invest in specialized support reflects their wish to display caring, enlightened parenting.

Ki-jung plays with this situation by providing exactly the type of professional psychological explanation the family anticipates.

Her performance suggests that therapeutic authority sometimes relies more on social performance and institutional reputation than on real empirical evidence.

This critique relates to broader issues about the commercialization of mental health services, especially in privileged social settings where psychological help can become a status symbol rather than a clinical need.

Class Anxiety and Psychological Vulnerability

The Parasite scene also highlights how therapeutic systems connect with class structures.

The Park family's worries about their child create a vulnerability that Ki-jung cleverly exploits. Their wealth gives them access to specialized services, yet their limited understanding makes them easy to mislead.

This situation points to a larger tension in today's mental health culture: greater visibility of psychological services does not always lead to better knowledge about their actual methods or limits.

Thus, Parasite presents not only a satirical take on deception, but a thoughtful commentary on the cultural conditions that allow therapeutic performance to replace genuine professional expertise.

4.3 Creative Expression and Psychological Recovery in Other Media

While Parasite critiques therapeutic performance, other contemporary media portray creative expression as a way to achieve psychological insight and emotional healing.

These representations often capture real psychological themes, but they frequently simplify therapeutic processes for storytelling purposes.

BoJack Horseman and Artistic Self-Reflection

The animated series BoJack Horseman offers one of the most sophisticated looks at psychological suffering, self-sabotage, and emotional recovery in television.

Although the show does not focus specifically on art therapy, it often shows creative work as a means of facing unresolved trauma and fractured identity.

Characters engage in performance, writing, and visual symbolism to help process their emotions. These portrayals align with key ideas of expressive therapy by showing how creative activity can make internal conflict visible and enhance self-awareness.

However, the series often speeds up emotional insight for dramatic effect, reinforcing the idea that artistic expression always leads to quick psychological clarity.

Black Swan and Pathological Artistic Obsession

Darren Aronofsky's Black Swan shows a different picture where artistic expression becomes linked with psychological fragmentation.

The film explores perfectionism, dissociation, and instability in identity through highly symbolic visual imagery.

While it is artistically striking, its portrayal risks confusing creativity with mental health issues. Such representations may continue romanticized views of artistic talent and mental illness.

This narrative idea can mislead the public by suggesting that psychological suffering is an unavoidable or necessary part of creative success.

Digital Wellness Culture

Social media platforms have greatly increased public interest in therapeutic aesthetics.

Visual trends emphasizing journaling, expressive painting, mood boards, and “healing through creativity” have made art-based self-care practices more popular.

This wider access provides some benefits. It normalizes emotional expression and encourages creative coping methods.

However, digital portrayals often disconnect artistic healing from clinical frameworks. Therapeutic practices might be repackaged as appealing lifestyle trends focusing on visual attractiveness rather than psychological depth.

The result is a kind of therapeutic oversimplification similar to the misrepresentative distortions seen in film and television.

5. Psychological Implications of Misrepresentation

Media portrayals of art therapy have important psychological effects on public understanding of mental health interventions.

Distorted Expectations

Dramatized depictions often set unrealistic expectations for how quickly therapy can work. Audiences may begin to expect immediate insights, symbolic revelations, or quick emotional shifts.

When actual therapeutic progress is slower and more complex, people may feel disappointed or disengaged.

Trivialization of Professional Expertise

Simplified portrayals can undermine the recognition of the extensive training needed for competent practice. When therapy seems easily replicable through instinct or simplistic symbolic interpretation, public respect for professional expertise fades.

This trivialization could lead to skepticism about legitimate therapeutic services.

Normalization of Psychological Discourse

Not all effects are negative. Media visibility has helped promote greater openness about mental health discussions. Even imperfect representations can reduce stigma and spark initial curiosity about therapy.

The challenge lies in finding a balance between accessibility and accuracy.

6. Discussion

The way art therapy is represented in contemporary media shows a basic tension between visibility and distortion.

On one hand, media exposure introduces wider audiences to therapeutic ideas, normalizes psychological language, and highlights the connection between creativity and emotional health.

On the other hand, these portrayals frequently simplify clinical intricacies, exaggerate therapeutic results, and misrepresent professional practices.

The case of *Parasite* illustrates how art therapy can be seen symbolically in cultural stories as a sign of expertise, sophistication, and psychological authority.

Its portrayal is not meant as clinical guidance, yet it reflects and reinforces widespread public misunderstandings.

Education about psychology must go beyond clinical training to include critical examination of media representations.

Building media literacy around psychological discussions enables both professionals and the public to separate symbolic storytelling from evidence-based practice.

Such literacy is increasingly crucial in a media landscape saturated with therapeutic language.

7. Conclusion

Art therapy is a valuable and supported psychological intervention that promotes emotional expression, self-exploration, and healing through creativity.

Its increased presence in modern media reflects a broader cultural interest in mental health and therapy discussions.

However, this visibility comes with significant representational challenges.

As shown in the analysis of *Parasite* and other modern media, portrayals of art therapy often prioritize narrative symbolism, dramatic efficiency, and visual appeal over professional precision.

These distortions can influence public expectations, downplay therapeutic expertise, and lead to misunderstandings about clinical practice.

At the same time, media representations can raise awareness and reduce stigma surrounding mental health support.

The role of psychology is not to dismiss cultural portrayals outright but to thoughtfully examine their impacts.

By encouraging informed media literacy and stressing accurate education about therapeutic practices, psychology can engage constructively with cultural narratives while maintaining professional integrity.

Ultimately, the relationship between art therapy and its media representation reflects a larger challenge in contemporary mental health discussions: ensuring that increased visibility truly enhances understanding rather than simply amplifying misconceptions.

References

1. American Art Therapy Association. (2023). *About art therapy*. American Art Therapy Association.
2. Case, C., & Dalley, T. (2014). *The handbook of art therapy* (3rd ed.). Routledge.
3. Edwards, D. (2014). *Art therapy*. Sage Publications.
4. Hinz, L. D. (2009). *Expressive therapies continuum: A framework for using art in therapy*. Routledge.
5. Kaimal, G., Ray, K., & Muniz, J. (2016). Reduction of cortisol levels and participants' responses following art making. *Art Therapy*, 33(2), 74–80.
6. Kramer, E. (1971). *Art as therapy with children*. Schocken Books.
7. Malchiodi, C. A. (2012). *Handbook of art therapy* (2nd ed.). Guilford Press.
8. Malchiodi, C. A. (2020). *Trauma and expressive arts therapy*. Guilford Press.
9. Naumburg, M. (1966). *Dynamically oriented art therapy*. Grune & Stratton.

10. Rubin, J. A. (2016). *Approaches to art therapy: Theory and technique* (3rd ed.). Routledge.
11. Waller, D. (2006). *Art therapy for children*. Sage Publications.
12. Moon, B. L. (2010). *Art-based group therapy*. Charles C Thomas.
13. McNiff, S. (2004). *Art heals: How creativity cures the soul*. Shambhala.
14. Kapitan, L. (2018). *Introduction to art therapy research*. Routledge.
15. Lusebrink, V. B. (2010). Assessment and therapeutic application of the expressive therapies continuum. *Art Therapy*, 27(4), 168–177.
16. Moon, C. H. (2002). *Studio art therapy*. Jessica Kingsley.
17. Junge, M. B., & Asawa, P. P. (1994). *A history of art therapy in the United States*. Mundelein.
18. Bong, J. H. (Director). (2019). *Parasite* [Film]. Barunson E&A.
19. Aronofsky, D. (Director). (2010). *Black Swan* [Film]. Fox Searchlight Pictures.
20. Raphael Bob-Waksberg, R. (Creator). (2014–2020). *BoJack Horseman* [TV series]. Netflix.
21. Illouz, E. (2008). *Saving the modern soul: Therapy, emotions, and the culture of self-help*. University of California Press.
22. Furedi, F. (2004). *Therapy culture*. Routledge.
23. Rimke, H. (2016). The rise of therapeutic culture. *Theory & Psychology*, 26(1), 1–16.
24. Leavy, P. (2018). *Method meets art* (3rd ed.). Guilford Press.

Rearticulating Indian Advertising : The Creative Philosophy of Piyush Pandey and Ogilvy India

Maha Shweta Rai

BFA 5th Semester

Institute of Fine Art, Bundelkhand University, Jhansi

Dr. Shweta Pandey

Assistant Professor, Institute of Fine Arts, Bundelkhand University, Jhansi

ABSTRACT

Advertising in India has undergone a significant transformation from imitation-based Western models to culturally rooted communication practices. This shift reflects a broader socio-cultural transition wherein brands increasingly engage with audiences through localized narratives and emotional resonance. The creative contributions of Piyush Pandey stand as a landmark in this transformation, as he successfully integrated indigenous sensibilities, vernacular language, and everyday experiences into mainstream advertising discourse (Pandey, 2015). His campaigns not only redefined brand communication but also emphasized emotional engagement and storytelling as central strategies for enhancing consumer connection and recall (Kotler & Keller, 2016). This paper critically examines Pandey's creative philosophy and evaluates its impact on Indian advertising through selected case studies, highlighting the role of cultural contextualization in shaping effective communication strategies.

INTRODUCTION

The evolution of advertising in post-independence India reflects a gradual yet profound transition from colonial inheritances to culturally resonant communication paradigms. Within this transformative trajectory, Piyush Pandey emerges as a seminal figure whose creative interventions redefined the linguistic, emotional, and socio-cultural fabric of Indian advertising. Born in 1955 in Jaipur into a large and culturally vibrant family, Pandey's formative years were shaped by an environment that blended simplicity, creativity, and collective lived experience. This early exposure to everyday narratives, combined with influences from a family deeply engaged in artistic and intellectual pursuits—including figures such as Ila Arun and Prasoon Pandey—played a crucial role in shaping his sensibility toward storytelling.

Prior to his entry into advertising, Pandey's engagement with diverse professional domains, including his participation in the Ranji Trophy as a

cricketer representing Rajasthan and his subsequent role as a tea taster, contributed significantly to the development of his observational acuity and attention to nuance. These experiences cultivated a deep understanding of human behavior, patience, and sensory perception—qualities that would later become foundational to his creative philosophy.

Pandey's association with Ogilvy India in 1982 marked a decisive turning point in Indian advertising discourse. At a time when the industry was predominantly characterized by the replication of Western advertising models—often articulated in English and detached from the lived realities of the Indian populace—Pandey introduced a paradigm shift by foregrounding indigenous languages, cultural idioms, and emotionally authentic narratives. His work demonstrated a conscious departure from elitist communication toward a more inclusive and relatable framework that resonated with the socio-cultural diversity of India.

A paradigmatic illustration of this shift can be observed in the iconic “Kuch Meetha Ho Jaaye” campaign for Cadbury, which recontextualized chocolate consumption within everyday Indian celebratory practices. By situating the product within familiar emotional landscapes—such as small victories, communal joy, and cricketing enthusiasm—Pandey effectively localized a global brand, thereby establishing a new grammar of advertising that was both culturally embedded and commercially impactful.

This paper seeks to critically examine Pandey's contribution to the indigenization of advertising in India, analyzing how his creative strategies synthesized global frameworks with local sensibilities. It further explores the ways in which his narrative techniques, grounded in lived experience and cultural authenticity, rearticulated the relationship between brands and audiences. By situating his work within broader theoretical discussions on localization, cultural semiotics, and consumer engagement, the study aims to underscore the enduring relevance of his approach in contemporary advertising practices. Ultimately, Pandey's journey from modest beginnings to becoming a transformative figure in the advertising industry underscores the power of everyday experiences as sources of creative inspiration. His work exemplifies how authenticity, cultural rootedness, and emotional intelligence can converge to produce communication that is not only persuasive but also profoundly human.

LITERATURE REVIEW

The study of advertising has evolved from a purely persuasive communication tool to a deeply psychological and cultural practice. Scholars in the field of marketing and communication have consistently emphasized that modern advertising is no longer limited to promoting products but is increasingly focused on building emotional relationships

with consumers. This shift is particularly visible in the Indian context, where cultural diversity and social values play a significant role in shaping consumer behavior.

Early advertising practices in India were largely influenced by Western models, where communication was often formal, English-centric, and product-oriented. However, several researchers argue that such approaches failed to resonate with the broader Indian audience, especially in rural and semi-urban areas. The need for culturally relevant communication led to the emergence of localized advertising strategies, often described as “glocalization,” where global frameworks are adapted to local sensibilities.

In this context, the work of Piyush Pandey represents a turning point in Indian advertising. According to Pandey (2015), creativity does not come from complex theories but from observing everyday life with sensitivity and empathy. His approach aligns with the concept of emotional branding, which suggests that consumers form stronger connections with brands that evoke feelings, memories, and personal experiences. Campaigns such as Fevicol, Cadbury Dairy Milk, and Asian Paints serve as classic examples of this theory in practice.

Scholarly discussions on emotional branding highlight that storytelling plays a crucial role in making advertisements memorable. Rather than presenting factual information, narratives rooted in real-life situations create a sense of familiarity and trust among audiences. This idea is supported by various communication theorists who argue that stories act as cultural bridges, allowing brands to integrate themselves into the daily lives of consumers.

Furthermore, studies in consumer psychology suggest that relatability is a key factor in advertisement effectiveness. Advertisements that reflect common experiences—such as family relationships, celebrations, or small everyday moments—are more likely to be remembered and shared. Piyush Pandey's campaigns effectively utilize this principle by transforming ordinary observations into powerful narratives that appeal to a wide audience.

In the digital era, the concept of hyper-personalization has gained importance, where advertisements are tailored to individual preferences using data and technology. However, recent literature indicates that despite technological advancements, emotional authenticity remains central to successful communication. Even in highly personalized digital campaigns, the core idea must still resonate emotionally with the audience.

Thus, the existing body of literature supports the argument that Piyush Pandey's work is not only creatively significant but also theoretically relevant. His campaigns embody key concepts such as emotional branding, storytelling, cultural relevance, and consumer relatability. By bridging the

gap between global advertising practices and Indian cultural identity, his work provides a strong foundation for understanding the evolution of advertising in India.

INSPIRATION BEHIND HIS CAMPAINGS

1. Fevicol : The Semiotics of Durability and Cultural Memory

Fevicol advertisements represent one of the most enduring examples of culturally embedded storytelling in Indian advertising. Rather than merely communicating product strength, these campaigns construct a symbolic narrative around the idea of permanence, trust, and social cohesion. The widely recognized metaphor of “unbreakable bonds” extends beyond the functional attribute of adhesive strength and enters the domain of emotional and cultural signification.

One of the most iconic advertisements portrays an overcrowded rural bus that remains intact despite excessive load. This visual exaggeration operates as a hyperbolic metaphor, reflecting everyday Indian realities while simultaneously reinforcing the product's reliability. The humor embedded within the narrative enhances memorability and audience engagement.

Similarly, the “generational sofa” narrative transforms an ordinary household object into a repository of familial continuity and emotional attachment. The advertisement draws upon intergenerational memory, suggesting that material objects can embody relationships and cultural values. Such representations demonstrate how personal experiences and domestic observations can be translated into powerful advertising narratives. This approach aligns with the theoretical framework of emotional branding, where products are positioned as carriers of meaning rather than mere utilities.



2. Cadbury Dairy Milk: Repositioning Consumption through Emotional Branding

The Cadbury Dairy Milk campaigns marked a significant shift in the perception of chocolate consumption within the Indian socio-cultural context. Traditionally associated with children, chocolate was repositioned as a universal symbol of celebration, emotion, and shared happiness.

The campaign “Kuch Khaas Hai” exemplifies this transformation by embedding chocolate within everyday moments of joy. A notable advertisement depicts a young woman spontaneously celebrating on a cricket field, thereby challenging conventional behavioral norms and emphasizing uninhibited emotional expression. This narrative disrupts stereotypical representations and aligns the product with freedom, spontaneity, and joy.

Another influential narrative, commonly referred to as “Pappu Pass Ho Gaya,” situates chocolate within the context of academic success—a deeply significant emotional moment in Indian families. By associating the product with such culturally relevant experiences, the campaign expands its symbolic value beyond consumption to celebration.

From a theoretical perspective, these campaigns illustrate the principles of **consumer relatability and emotional resonance**. The strategic shift from product-centric messaging to experience-driven storytelling enabled Cadbury to access a broader demographic, thereby redefining its market identity. This transformation demonstrates how advertising can actively reshape consumer perception and cultural norms.

3. Vodafone ZooZos : Minimalism, Innovation, and Visual Communication

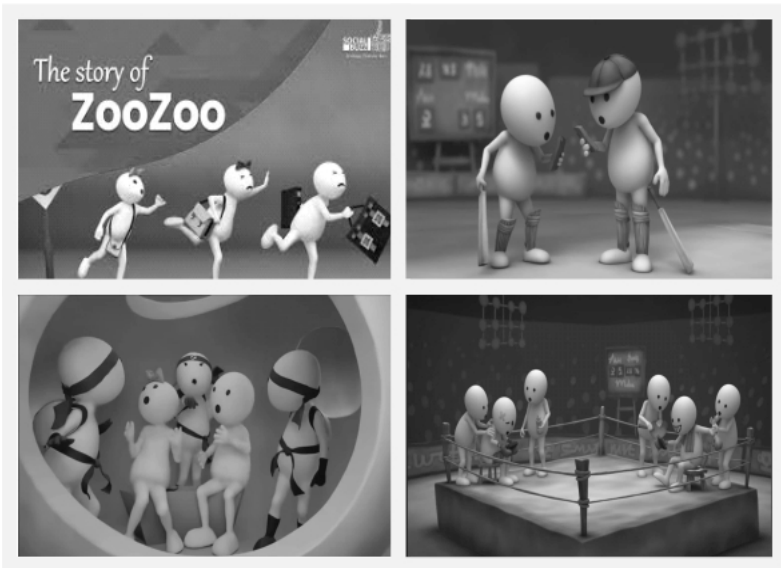
The Vodafone ZooZoo campaign represents a landmark innovation in Indian advertising, particularly in the domain of visual storytelling and character-based branding. Introduced during the Indian Premier League (IPL), these advertisements utilized short-format narratives to capture audience attention within limited time intervals.

The ZooZoo characters—minimalistic, non-verbal, and universally expressive—function as visual metaphors for communication efficiency and technological simplicity. Their exaggerated physicality and silent performance transcend linguistic barriers, making the campaign accessible to a diverse audience.

Importantly, the production strategy behind the campaign reflects creative ingenuity under constraints. Instead of relying on digital animation or celebrity endorsements, the campaign employed cost-effective techniques involving human performers in stylized costumes. This

approach not only reduced production costs but also reinforced the authenticity and uniqueness of the characters.

From a communication theory perspective, ZooZoos exemplify **non-verbal semiotics and symbolic abstraction**, where meaning is conveyed through visual cues rather than language. This demonstrates that effective advertising need not depend on complexity, but rather on clarity, innovation, and conceptual strength.

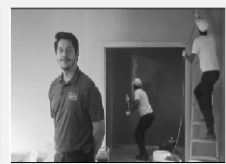
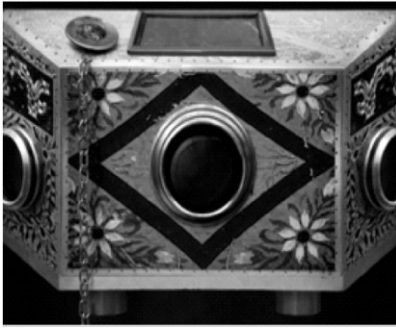


4. Asian Paints: Domestic Space as Emotional Narrative

The “Har Ghar Kuch Kehta Hai” campaign by Asian Paints represents a profound shift in brand positioning, where the focus transitions from product features to emotional storytelling centered around domestic life. The campaign conceptualizes the home as a living entity that embodies memories, relationships, and identity.

By framing walls as silent witnesses to human experiences, the campaign introduces a poetic dimension to advertising. This narrative strategy aligns with the concept of **spatial storytelling**, where physical environments are imbued with emotional and symbolic meaning.

Subsequent campaigns, such as “Beautiful Homes Service,” further extend this narrative by integrating functional convenience with emotional satisfaction. The brand positions itself not merely as a provider of paint, but as a facilitator of meaningful living spaces. This approach reinforces trust and strengthens consumer-brand relationships.

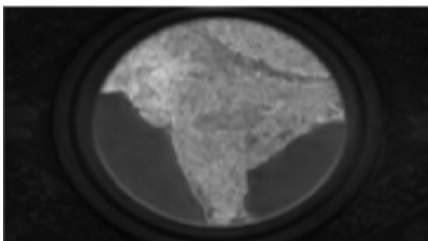


5. Incredible India: Cultural Representation and National Identity

The “Atithi Devo Bhava” campaign under the Incredible India initiative illustrates the role of advertising in constructing and communicating national identity. Unlike conventional commercial campaigns, this initiative operates at the intersection of culture, tourism, and public diplomacy.

The campaign emphasizes hospitality as a core Indian value, thereby transforming a cultural principle into a communicative strategy. Notably, the creative execution demonstrates how resource constraints can stimulate innovation. By utilizing archival imagery and minimal production elements, the campaign achieves emotional depth and aesthetic resonance.

From a broader perspective, this campaign reflects the concept of **nation branding**, where advertising serves as a medium for representing cultural identity on a global stage. It highlights how simplicity, authenticity, and cultural rootedness can generate powerful narratives even in the absence of high production budgets.



SIGNIFICANCE OF THE STUDY

This study holds significant importance in understanding the transformation of Indian advertising from a product-centric communication model to an emotion-driven and culturally embedded practice. It highlights how advertising in India evolved beyond imitation of Western frameworks and developed its own identity through storytelling rooted in everyday life. By focusing on the creative philosophy of Piyush Pandey, the study brings forward a unique perspective on how cultural sensitivity and human observation can redefine communication strategies.

One of the key contributions of this study is its emphasis on **emotional branding** as a powerful tool in modern advertising. In an era dominated by digital media, data analytics, and hyper-personalization, this research underlines that emotional connection still remains the core element of impactful communication. Piyush Pandey's campaigns demonstrate that advertisements built on simple, relatable human experiences can create deeper and longer-lasting brand recall compared to highly technical or product-focused advertisements.

The study is also significant for its practical implications in the field of marketing and creative industries. It provides valuable insights for students, advertisers, and marketers by showing that effective ideas do not necessarily require large budgets or advanced technologies, but rather a keen observation of real-life situations and emotions. This challenges the conventional belief that creativity is dependent on resources, and instead positions it as a result of perspective and sensitivity.

Furthermore, this research contributes to the academic understanding of **consumer behavior and communication theory** by illustrating how narratives influence perception and decision-making. Campaigns such as Fevicol, Cadbury Dairy Milk, and Asian Paints are not merely advertisements but cultural texts that reflect and shape social values, relationships, and collective memory.

Another important aspect of this study is its relevance in the contemporary digital landscape. While modern advertising increasingly focuses on algorithm-driven targeting, this research emphasizes that technology alone cannot replace authenticity. The findings suggest that future advertising strategies must integrate both data-driven personalization and emotionally resonant storytelling to remain effective.

Finally, this study serves as an inspiration for aspiring creatives by reinforcing the idea that innovation begins with observation. By documenting the journey and work of Piyush Pandey, it encourages individuals to look at ordinary moments with extraordinary attention and

transform them into meaningful creative expressions.

OBJECTIVES OF STUDIES

The primary objective of this research paper is to explore the creative philosophy of Piyush Pandey, the iconic figure behind Ogilvy India's most celebrated campaigns. The study highlights how his work emerged not from theoretical books, expensive tools, or imported models, but from sharp powers of observation



drawn from everyday Indian life and common human stories. Through analysis of landmark campaigns of Fevicol's, Cadbury Dairy Milk's, Madhya Pradesh Tourism narratives, and others, the paper examines the behind the scenes inspirations that reveal even the biggest creative projects stemmed from simple, relatable observations, memories, family resilience, local warmth, and emotions.

He never treated consumers as “stupid” but respected their intelligence and feelings, crafting stories that connected emotionally and made brands part of cultural memory. The study seeks to draw practical lessons for aspiring creatives and marketers on learning to observe their surroundings more attentively, valuing real life insights over formal methods, and building communication that touches hearts while delivering commercial success.

RESEARCH METHODOLOGY

The present study adopts a qualitative and interpretive research framework to critically examine the creative contributions and cultural interventions of Piyush Pandey within the domain of Indian advertising. Given the exploratory and analytical nature of the research, the methodology is primarily grounded in textual analysis, narrative inquiry, and cultural interpretation, allowing for an in-depth understanding of the socio-cultural dimensions embedded in advertising practices.

The research relies extensively on secondary data sources, including published interviews, archival advertising campaigns, scholarly articles, and media discourses that document the evolution of advertising strategies associated with Ogilvy India. These sources are systematically examined to trace the ideological and stylistic shifts introduced by Pandey, particularly

in relation to the indigenization of advertising narratives. Special emphasis is placed on the analysis of select campaigns, such as those developed for Cadbury, which serve as representative case studies for understanding the integration of local cultural symbols, linguistic plurality, and emotional resonance in brand communication.

The methodological approach is further informed by the theoretical perspectives of cultural semiotics and localization, enabling the study to decode the symbolic structures and meanings embedded within advertising texts. Through close reading and interpretive analysis, the research seeks to uncover how everyday experiences, vernacular expressions, and culturally specific metaphors are strategically employed to construct relatable and affective narratives. This interpretive lens also facilitates an examination of how global advertising frameworks are adapted and recontextualized within the Indian socio-cultural milieu. In addition, a narrative analytical approach is employed to understand the biographical influences that inform Pandey's creative vision. By situating his personal experiences—ranging from his early life in Jaipur to his professional trajectory across diverse fields—within the broader context of his work, the study establishes a linkage between lived experience and creative output. This biographical contextualization enriches the analysis by highlighting the role of individual subjectivity in shaping broader cultural practices within the advertising industry. The study maintains a critical-analytical stance throughout, engaging with both the aesthetic and functional dimensions of advertising. It evaluates not only the cultural authenticity and emotional appeal of the campaigns but also their broader implications for audience engagement, brand positioning, and the democratization of communication. The absence of primary empirical data is addressed through rigorous cross-referencing of credible secondary sources, ensuring the reliability and validity of the interpretations presented.

Overall, the research methodology is designed to provide a comprehensive and nuanced understanding of how culturally embedded creativity operates within advertising discourse. By combining textual analysis, theoretical interpretation, and narrative contextualization, the study aspires to contribute meaningfully to academic discussions on localization, creativity, and cultural representation in contemporary media practices.

CONCLUSION

The creative legacy of Piyush Pandey, in conjunction with the innovative ecosystem of Ogilvy India, represents a paradigmatic shift in the epistemology of advertising in India, wherein the quotidian is reimagined as a site of profound narrative and emotional potential. Their collective praxis demonstrates an exceptional ability to distill meaning from seemingly insignificant moments of everyday life and to transform these observations into culturally resonant and affectively powerful communicative forms.

This methodological orientation underscores a broader philosophical stance: that creativity is not contingent upon material abundance or technological sophistication, but rather upon attentiveness, empathy, and an acute sensitivity to lived experience.

The success of landmark campaigns such as the Incredible India initiative exemplifies this ethos, wherein resource constraints did not impede but rather catalyzed inventive expression. By employing minimalistic yet evocative visual and narrative strategies, the campaign succeeded in rearticulating India's cultural plurality and aesthetic richness for both domestic and global audiences, garnering critical acclaim and institutional recognition. Similarly, Pandey's work for Cadbury effectively dismantled entrenched consumer stereotypes, repositioning chocolate consumption as an intergenerational and emotionally inclusive experience. Campaigns such as “Kuch Khaas Hai” and “Kuch Meetha Ho Jaaye” expanded the semiotic field of the product, embedding it within the affective economy of celebration, nostalgia, and shared joy. In parallel, the enduring appeal of Fevicol advertisements—particularly narratives such as “Sofa: 60 Years Strong”—illustrates Pandey's capacity to metaphorically translate product functionality into emotionally charged symbols of durability, kinship, and continuity. The adhesive becomes not merely a utilitarian object but a cultural signifier of resilience and relational permanence. Likewise, the evocative positioning of Asian Paints through the celebrated articulation “Har Ghar Kuch Kehta Hai” signifies a profound conceptual shift, wherein domestic spaces are reimagined as repositories of memory, identity, and emotional expression. In each of these instances, the convergence of narrative simplicity and conceptual depth exemplifies a distinctive communicative grammar that is both accessible and intellectually compelling.

Beyond the domain of professional achievement, Pandey's lived experiences further illuminate the intrinsic nature of his creative philosophy. Anecdotal instances—such as his thoughtful gesture of preparing a simple yet personally meaningful dish for Amitabh Bachchan—reveal a consistent alignment between his personal ethos and professional output. This narrative is not merely illustrative but emblematic of a broader principle: that authenticity, emotional intelligence, and attentiveness to individual preferences constitute the foundational elements of meaningful human connection. Such gestures, rooted in sincerity rather than ostentation, reinforce the argument that creativity operates most effectively when it emerges from genuine understanding and affective engagement.

Consequently, the broader pedagogical implications of Pandey's work extend beyond advertising theory into the realms of creative practice and humanistic inquiry. His trajectory affirms that the cultivation of creativity

necessitates a disciplined attentiveness to the environment, an openness to diverse experiences, and a commitment to empathetic observation. The act of documenting, reflecting upon, and reinterpreting everyday phenomena becomes central to the generation of innovative ideas. In this sense, creativity is reframed not as an exceptional or rarefied faculty, but as an accessible and democratized process grounded in curiosity and emotional awareness.

In conclusion, the contributions of Piyush Pandey delineate a transformative framework for understanding creativity as an interplay between cultural rootedness and imaginative reinterpretation. His campaigns have not only redefined brand communication but have also permeated the collective consciousness, embedding themselves within the emotional and cultural fabric of Indian society. By harmonizing simplicity with profundity, and by privileging authenticity over artifice, Pandey has established a legacy that continues to inform and inspire contemporary creative practices. His work ultimately serves as a testament to the enduring power of observation, compassion, and narrative ingenuity, reaffirming that even the most ordinary moments possess the potential to be rendered extraordinary through a discerning and empathetic lens.

REFERENCE

- Pandey, P. (2015). *Pandeymonium: Piyush Pandey on advertising*. Penguin Books India.
- Pandey, P. (2019). *Doing the right thing: The Piyush Pandey way*. Penguin Random House India.
- Ogilvy. (2025). *Remembering Piyush Pandey: The man who made creativity live in people's hearts*.
<https://www.ogilvy.com/ideas/remembering-piyush-pandey-man-who-made-creativity-live-peoples-hearts>
- India Today. (2025). *Remembering Piyush Pandey: The ad legend who made brands immortal*.
<https://www.indiatoday.in/business/story/piyush-pandey-who-was-he-fevicol-dairy-milk-asian-paints-famous-ads-adman-dies-age-70-tribute-2807686-2025-10-24>

- Romana, S. (n.d.). *Piyush Pandey: The man who taught India to speak advertising with its heart*. LinkedIn.
<https://www.linkedin.com/pulse/piyush-pandey-man-who-taught-india-speak-advertising-its-romana-4lj8f>
- Sidhu, K. B. (n.d.). *The lion of Indian advertising: A farewell*. (Online article).
- Bhandari, H. (2010). *Advertising in India: History and evolution*. Sage Publications India.
- Kumar, K. J. (2006). *Mass communication in India* (4th ed.). Jaico Publishing House.
- Mehta, N. (2012). *Behind the scenes of Indian advertising*. Rupa Publications.
- Jefkins, F. (2000). *Advertising*. Pearson Education.
- O'Guinn, T., Allen, C., & Semenik, R. (2018). *Advertising and integrated brand promotion* (7th ed.). Cengage Learning.
- Kotler, P., & Keller, K. L. (2016). *Marketing management* (15th ed.). Pearson.
- Belch, G. E., & Belch, M. A. (2021). *Advertising and promotion: An integrated marketing communications perspective* (12th ed.). McGraw-Hill.
- पाण्डेय, पीयूष. (2015). पाण्डेमोनियम: विज्ञापन पर पीयूष पाण्डेय के विचार. पेंगुइन बुक्स इंडिया ।
- पाण्डेय, पीयूष. (2019). डूइंग द राइट थिंग: पीयूष पाण्डेय का तरीका. पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया ।
- कुमार, के. जे. (2010). भारत में जनसंचार. जयको पब्लिशिंग हाउस ।
- शर्मा, आर. (2018). भारतीय विज्ञापन का विकास और प्रभाव. राजकमल प्रकाशन ।
- गुप्ता, एस. (2016). विज्ञापन और जनसंचार. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय ।
- सिंह, बी. (2014). मीडिया और समाज. लोकभारती प्रकाशन ।
- मिश्रा, ए. (2017). भारतीय मीडिया: स्वरूप और परिवर्तन. वाणी प्रकाशन ।

लेखकों के लिए दिशा-निर्देश

- शोध पत्रिका का उद्देश्य वर्तमान परिदृश्य में ललित कला, भाषा, मूलभूत विज्ञान, संचार, सामाजिक विज्ञान, मानविकी अध्ययन से संबंधित अन्तर अनुशासनात्मक संबंधी विषयों में नवाचार एवं अनुसंधान को बढ़ावा देना है।
- पत्रिका में प्रकाशन हेतु प्रेषित शोध पत्र मूल होना चाहिए और किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशित नहीं होना चाहिए।
- लेखक को शोध पत्र के साथ घोषणा पत्र प्रस्तुत करना होगा, जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख करना होगा कि शोध पत्र उनका मौलिक लेखन है और प्रकाशन के लिए अन्य को प्रस्तुत नहीं किया गया है। बेहतर होगा कि शोध पत्र लेखक अपने शोध आलेख के संबंध में प्लेगेरिज्म (Plagiarism) रिपोर्ट संलग्न कर प्रेषित करें।
- लेखकों को अपना आलेख निम्न प्रारूप में प्रस्तुत करना होगा :—
 - » शोध सारांश, प्रमुख शब्द, परिचय, शोध साहित्य की समीक्षा, शोध उद्देश्य, परिकल्पनाएं, शोध प्रविधि तालिकाएं, एवं ग्राफ परिणाम एवं विवेचना निष्कर्ष एवं संदर्भ सूची ।
 - » शोध पत्र एम. एस. वर्ड, पेपर साइज ए-4, फॉन्ट कृतिदेव 010/ Times New Roman/ यूनिकोड, फॉन्ट साइज 12 मेटर 1.5 मार्जिन स्पेस एवं जस्टीफाईड होना चाहिए और अपने शोध आलेख को ई-मेल: kalasopan@gmail-com प्रेषित करना होगा।
 - » पत्राचार के लिए लेखक को शोध पत्र प्रेषित करने के साथ ही वायोडाटा प्रस्तुत करना होगा। जिसमें शोध पत्र का शीर्षक, लेखक का नाम, पदनाम, संपर्क नम्बर, ईमेल आईडी एवं पोस्टल एड्रेस संबंधी जानकारी उपलब्ध करानी होगी।
 - » शोध का सारांश 200–250 शब्दों का होना चाहिए। मेन स्क्रिप्ट में फुटनोट नहीं होना चाहिए। शोध पत्र के अंत में सन्दर्भ APA स्टाईल में दिये जाने चाहिए। सन्दर्भ को क्रमानुसार सूचीबद्ध किया जाना चाहिए।
 - » शोध पत्र में तालिकाओं और आंकड़ों को क्रमिक रूप से क्रमांकित

किया जाना चाहिए और प्रत्येक तालिका व आंकड़ों के अंत में उसके स्रोत का उल्लेख आवश्यक रूप से करना होगा।

- » शोध पत्र में उल्लेखित तथ्यात्मक अशुद्धि और कॉपीराइट की जिम्मेदारी शोध लेखक की होगी।

घोषणा पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि.....

(लेखक का नाम) शोध पत्र/पुस्तक समीक्षा.....

(शोध पत्र का शीर्षक) मेरे द्वारा लिखा गया मौलिक शोध पत्र है। यह शोध पत्र अद्यतन कहीं भी न तो प्रकाशित हुआ है और न ही प्रकाशन हेतु प्रक्रियाधीन है। इसके साथ ही साथ साहित्य चोरी की जाँच की जा चुकी है और यह 10 प्रतिशत से कम है।

लेखक का नाम एवं हस्ताक्षर

Guidelines for Authors

- The aim of the research journal is to promote innovation and research in the current scenario on topics related to Fine Arts, Social Sciences, Language & Humanities, Basic and advanced Sciences.
- The research paper sent for publication in the journal should be original and should not be published in any other journal or not in process of publication.
- The author has to submit the declaration form, along with the research paper, clearly stating that the research paper is his/her original writing and not presented to others for publication.
- **Research paper should be in following format :**
 - o Abstract, keywords, objective, introduction, write literature review, hypothesis, research \ methodology, tables and graphs, research and analysis, conclusion, reference list.
 - o M.S. Word, Paper Size A-4, Font Style Times New Roman/ Kritidev/Unicode, Font Size 12, and 1.5 should be margin space and justified and send your research article to e-mail: kalasopan@gmail.com
- For the correspondence, the author will have to submit the research paper as well as submit the bio data. In which information related to the title of the research paper, author's name, designation, Institution name, contact number, email ID and postal address will have to be provided.
 - o The abstract of the research should be between 200-250 words. The main script should not contain footnotes. References should be given at the end of the research paper in APA style. References should be listed sequentially.
 - o Tables and figures should be numbered sequentially in the

research paper and the source must be mentioned at the end of each table and data.

- o The author will be responsible for the factual error and copyright mentioned in the research paper.

Declaration Form

Certified that
(Name of the author) Research Paper/Book Review (title of research paper) is the original research paper written by me. This research paper has neither been published anywhere nor is it under process for publication till date. Along with this plagiarism has been checked and it is less than 10 percent.

Name and signature of the author

ISSN: 3107-7560

KALA SOPAN (REG.)

☎ 9935032832, 8127529762

✉ kalasopan2022@gmail.com  KALA SOPAN

 www.kalasopan.com  [kala sopan](https://www.instagram.com/kala_sopan)  [@kalasopan](https://twitter.com/kalasopan)